जैसे मैंने सीखा

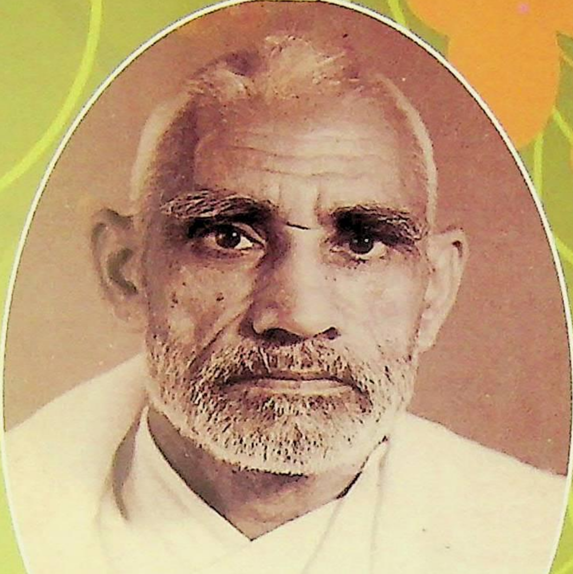

महात्मा श्री नारायणदास जी

जैसे मैंने सीखा

अनुभूति
से
पूर्व
की
मेरी
जीवन
घटनाएँ

लेखक,

महात्मा श्री नारायणदासजी

प्रकाशक,

नारायण साहित्य प्रकाशन,

श्री भारतीय-विद्यालय शिवपुरी (मध्य-प्रदेश)

द्वितीय संस्करण - गुरु पूर्णिमा 15 जुलाई 2011

मूल्य - पच्चीस रूपये

प्राक्कथन

महात्मा गाँधी की "आत्म-कथा (सत्य के प्रयोग);" श्री जवाहरलाल नेहरू की "मेरी कहानी" अपने आपमें इस देश में देश एवं समाज के प्रमुख व्यक्तियों द्वारा लिखी गई आत्म-कथाओं की लम्बी परम्परा की ही एक कड़ी है। देश के लगभग सभी महापुरुषों ने अपनी जीवन-गाथा को किसी न किसी रूप में समाज के बीच-जन सामान्य के सम्मुख रखा है। यह एक ऐसी परम्परा है जो इतिहास और इतिवृत्त के बीच चलती है और इसी के साथ होती है इसको असंदिग्ध प्रामाणिकता। स्वयं भोक्ता ही यहाँ वक्ता भी होता है। अतः ऐसे अनदेखे-अनजाने वृत्त भी अनावृत्त हो जाते हैं जो और किसी माध्यम से सम्भव ही नहीं है।

आदरणीय पूज्य महात्माजी की रचना- "कुण्डलिनी-व्यक्तिगत अनुभव" उनकी जीवनगाथा के उत्तरार्द्ध के रूप में हम सबको लगी। अतः इस अपूर्ण को पूर्ण रूप में देखने की सहज उत्कंठा पूज्य महात्माजी के हम सभी शिष्यों को हुई आदरणीय महात्माजी से विनम्र किन्तु साग्रह निवेदन हमने किया, जिसे पूज्यवर ने सहज ही स्वीकार कर हमें उपकृत किया है। अस्तु,

तद्नुसार ही यह पुस्तक 'जैसे मैंने सीखा' पूर्व पुस्तक 'कुण्डलिनी-व्यक्तिगत अनुभव' के पूर्वार्द्ध के रूप में हम सभी के बीच है। निश्चय ही इसका भी अपना एक विशेष महत्व और विशिष्ट रूप है।

आदरणीय महात्माजी के जीवन में घटित हुई अनेक घटनाऐं हमें प्रेरित करेंगी एवं मार्गदर्शिका होंगी ऐसा मेरा विश्वास है।

'सर्वे भवन्तु सुखिनः' के साथ आप सबके हाथों 'जैसे मैंने सीखा' सौंपकर आपके और विषय-वस्तु के मध्य से विदा लेता हूँ।

स्मृति सदन, दिव्यालोक,
सरक्यूलर रोड, शिवपुरी (म.प्र.)
गङ्गादशहरा सं. २०३३ वि.

विनीत-
धर्मवीर त्रिवेदी

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ
१.	कौटुम्बिक संक्षिप्त परिचय	१
२.	शैशव अवस्था	५
३.	किशोर अवस्था	७
४.	तरुण अवस्था	१०
५.	ब्रह्मचर्य-विद्यालय	१२
६.	स्वावलम्बन की ओर प्रयास	१३
७.	दो मूल्यवान अनुभव	१४
८.	खादी से प्रेम	१७
९.	पत्नी से सुधार का आग्रह	१८
१०.	समाज के अवान्छनीय तत्व से संघर्ष	१८
११.	हिन्दू कॉलेज देहली में प्रवेश	२०
१२.	कल्याण कुटी, कृष्णगंज, पोहरी का जीवन	२४
१३.	स्पर्शास्पर्श का भयंकर तूफानी आन्दोलन	२६
१४.	पुनर्विवाह के प्रकरण से छुटकारा	३१
१५.	आदर्श सेवा संघ का काम करते हुए प्रथम धक्का	३२
१६.	आदर्श सेवा संघ का काम करते हुए दूसरा धक्का	३३
१७.	आदर्श सेवा संघ से त्याग-पत्र	३५
१८.	एक साधु की चेतावनी	३६
१९.	केदारेश्वर पर नवाह पाठ	३७
२०.	पैदल यात्रा और प्रभुनिष्ठा का प्रत्यक्ष चमत्कार	३८
२१.	यात्रा में घटित असाधारण घटनाएँ	३९
२२.	पाठशालाओं का अनुभव	४८
२३.	स्वामी शिवानन्दजी से भेंट	४९
२४.	श्री बदरिकाश्रम की यात्रा	५१
२५.	देवप्रयाग में कीर्तन करने वाली देवी से प्रेरणा	५१
२६.	मार्ग में बूढ़ी माई से प्रेरणा	५३
२७.	पाताल गंगा चट्टी के मार्ग में विचित्र घटना	५५
२८.	ऋषिकेश से शिवपुरी आना	५६
२९.	भारतीय-विद्यालय का जन्म	५७

दूसरे संस्करण की भूमिका

श्री रामचरित मानस के उत्तर कांड में भरत जी प्रभु राम से पूछते हैं कि संतों के लक्षण क्या हैं? राम भद्र ने उत्तर देते हुए कहा :-

विषय अलंपट सील गुनाकर।
पर दुख दुख सुख सुख देखे पर।।
सम अभूत रिपु विमद विरागी।
लोभामरष हरष भय त्यागी।।
कोमलचित दीनन्ह पर दाया।
मन बच क्रम मम भगति अमाया।।
सबहिं मानप्रद आपु अमानी।
भरत प्रान सम मम ते प्रानी।।
विगत काम, मम नाम परायन।
सांति विरति विनती मुदितायन।।
सीतलता सरलता मयत्री।
द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री।।
ए सब लच्छन बसहिं जासु उर।
जानेहु तात संत संतत फुर।।
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं।
परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं।।

ये सारे गुण महात्मा नारायणदास के व्यक्तित्व में समाहित थे। वे एक परम सन्त थे। स्वयंभू गुरु थे और महान शिक्षक थे। उनका कोई भौतिक गुरु नहीं था। अपने अध्यवसाय, लगन, ईश्वर-निष्ठा और आत्मा प्रेरित साधना से उन्होंने सिद्धि प्राप्त की थी और यह सिद्ध किया था कि साधना से सिद्धि का सिद्धान्त एकदम सही है। अपनी सतत साधना से महात्मा जी ने आत्मस्वरूप को पहचान लिया था और कुण्डलिनी महाशक्ति को जाग्रत कर प्रभूत आध्यात्मिक सम्पदा अर्जित की थी, जिसके प्रदर्शन में उनकी रुचि और विश्वास नहीं था। आध्यात्मिक सिद्धि

को चमत्कार का विषय बनाकर महात्मा जी उसकी गरिमा को ठेस नहीं पहुँचाना चाहते थे। आध्यात्मिक सम्पदा के दान में उनका विश्वास था। सुपात्र की साधना के कठिन मार्ग की यात्रा को सरल बनाने में वे अपनी शक्तियों का सदुपयोग करते थे। आध्यात्मिक सम्पदा जितनी दान की जाय उतनी बढ़ती है। महात्मा जी ने अपने विशाल शिष्य समूह में उसका उदारता पूर्वक दान किया। वे सरल स्वभाव के सादा जीवन जीने वाले संत थे। सादगी और सौम्यता के परमाणुओं से विनिर्मित उनका व्यक्तित्व सच्चे साधक को अपनी ओर आकर्षित करता था।

आध्यात्मिक लेखन के क्षेत्र में भी उनका प्रदेय बहुत उल्लेखनीय है। जो लोग भौतिक रूप से उन तक नहीं पहुँच सकते थे, उन तक अपने आध्यात्मिक अनुभव और चिन्तन पहुँचाने के लिए उन्होंने वाणी का सहारा लिया। वाणी का वाचिक रूप बैखरी कहलाता है। उनके प्रवचनों में यह रूप प्रकट होता था। उनके लिखने में वाणी का पश्यन्ती रूप प्रकट हुआ है। हमारे जो धार्मिक ग्रन्थ हैं उनकी सेंकड़ों टीकायें हुई हैं और हो रही हैं। कुछ भाष्य ऐसे होते है जो संतो द्वारा अपने अनुभव के प्रकाश में लिखे गए हैं किन्तु अनेक भाष्य ऐसे होते हैं जो सुधी विद्वानों द्वारा अपने विस्तृत अध्ययन के आधार पर लिखे गए हैं। ऐसे भाष्यों में विद्वता दिखाई देती है, अनेक सन्दर्भ मिलते हैं, अन्य विद्वानों के लम्बे उद्धरण मिलते हैं और शब्दानुवाद की प्रमाणिकता मिलती हैं। इन सबके कारण वे बोझिल और दुरूह जैसे हो जाते हैं। सन्दर्भों में उलझता हुआ साधारण पाठक भ्रमित सा हो जाता है। यह सम्प्रेषणीयता के लिए बाधक स्थिति होती है। किन्तु संतो के भाष्य अनुभूत्यात्मक होने के कारण अथिक सम्प्रेषणीय होते है, क्योंकि वे अपने-अपने का प्रमाण देते हैं ग्रंथों का नहीं। यदि ग्रंथों का प्रमाण-संदर्भ देते भी हैं तो वह बहुत संक्षिप्त होता है। अनुभव पर आधारित उनके भाष्यों में वाणी की या शब्द की पश्यंती विभूति क्रियाशील होती है।

महात्मा जी ने गीता जी पर, ईशावास्योपनिषद पर, श्री रामचरित मानस पर और गांधी-दर्शन पर भाष्य ग्रन्थ लिखे अपने

आध्यात्मिक अनुभव के आधार पर । उन ग्रन्थों को पढ़कर ऐसा लगता है कि जैसे लेखक को पश्यन्ती वाग्-देवी का साक्षात्कार हो रहा हो । महात्मा जी के सभी ग्रन्थ भूल-भुलैया से मुक्त सहज अभिव्यक्ति के उदाहरण हैं । उनके व्यक्तित्व की सरलता और सादगी ग्रन्थों की भाषिक संरचना में अवतरित हुई है । उन ग्रन्थों के अतिरिक्त उनके ऐसे ग्रन्थ भी है जिनमें उन्होंने साधक या पाठक को अपने आपको जानने-पहचानने का विधिवत् सुकर सन्देश दिया है ।
'मज्झिम निकाय' में गौतम बुद्ध का कथन है- "यदि किसी मनुष्य के पैर में विष में बुझा तीर किसी ने चुभा दिया हो, और उस घातक अवस्था से मुक्त हुये बिना वह इस बात को जानने में समय नष्ट करे कि तीर चलाने वाला कौन था ? उसका कुल-गोत्र, नाम क्या था? उसकी कद-काठी कैसी थी आदि तो उस व्यक्ति की दुर्गति निश्चित समझो ।" इसी प्रकार यदि हम ईश्वर या परमात्मा के बारे में वाद-विवाद करते रहें और अपने हृदय जीवन के बन्धन, पीड़ा, प्रतिकूलतायें, और देवी प्रकोप के चुभे हुये तीर को न निकालें तो हमारा जीवन नष्ट हुये बिना नहीं रहेगा । बाह्य -जीवन के प्रपंचों को छोड़कर हमें अन्तर्मुख होना चाहिये । अपनी छुपी हुई शक्तियों को पहचाने बिना शक्तिशाली नहीं बना जा सकता । अपने को जानना सबसे बड़ी सिद्धि है । अपने को जानने वालों की सभी आकांक्षायें पूरी होतीं हैं । महात्मा जी के साहित्य का यही सन्देश है ।

इस दूसरे संस्करण को प्रस्तुत करने में श्री रामसनेही दुबे के संकल्प और श्री ललित कुमार दीक्षित के एतद् विषयक प्रयास अत्यंत सराहनीय हैं ।

(डॉ. परशुराम शुक्ल विरही)
देवीपुरम कॉलोनी
शिवपुरी म.प्र. 473551

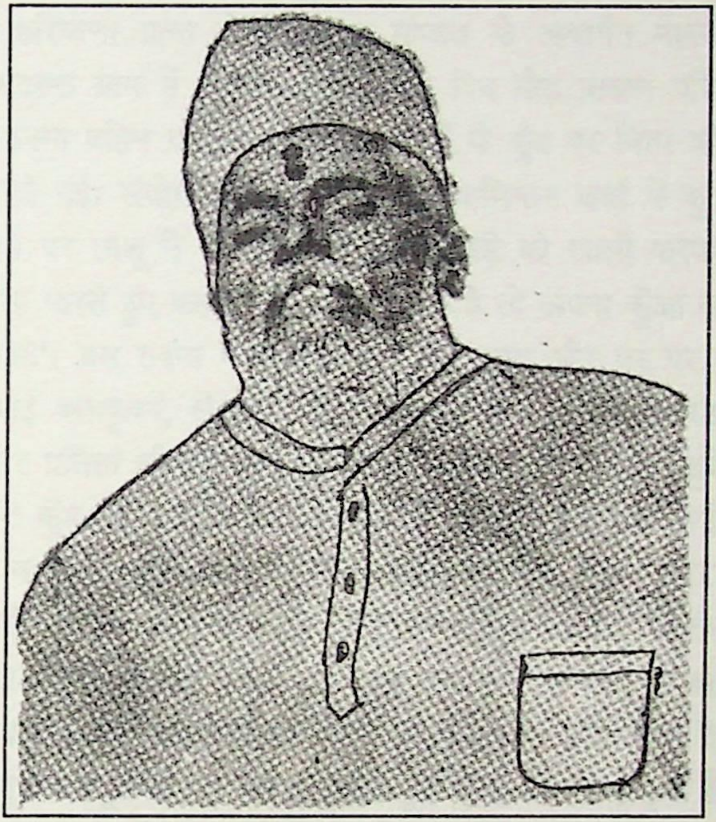

पूज्य पंडित शिवदयालजी त्रिवेदी
(पूज्य महात्माजी के पिताजी)

संक्षिप्त कौटुम्बिक परिचय

श्री पं० शिवदयाल त्रिवेदी–पूज्य पिताजी

हरियाणा प्रान्त के महेन्द्रगढ़ मण्डल के अन्तर्गत नारनौल के समीप मढाणा ग्राम में सन् १८४५ में एक दिन गौड़ ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न रुक्मा बहिन ग्राम के एकमात्र अहीरों के कुँए पर नित्य की भाँति पानी भरने गई। संयोग से लालू अहीर से स्वाभिमान चर्चा में कुछ कहा सुनी होने पर लालू ने रुक्मा बहिन के भरे घड़े को खाली करवा लिया और ताना मारते हुए कहा–'यदि इतनी ठसक है तो अपना कुँआ खोदकर पानी पीओ'। बस रुक्मा में स्वाभिमान जाग्रत हुआ और घर पर आकर अपने भाई बालकृष्ण, खेमानंद तथा ठाकरसी के आगे खाली घड़ा रख दिया और प्रतिज्ञा की कि जब तक अपना कुँआ घर में नहीं खुदेगा मैं अहीरों के कुँए का पानी नहीं पीऊँगी, चाहे कितनी ही दूर से पानी पीने को क्यों न लाना पड़े। तीनों भाईयों ने बहिन को धैर्य बँधाया और कुँआ खोदने की प्रतिज्ञा की। तदनुसार उसी क्षण कुँआ खोदना आरंभ कर दिया गया और जब तक कुँआ नहीं खुदा तब तक दो मील दूर कोजिन्दा ग्राम से पानी लाकर पीते रहे। यह कुँआ लगभग १०० फीट गहरा है जिसे तीनों भाईयों ने पूरा खोदा। सत्य संकल्प पूर्ण हुआ और प्रभु कृपा से एक साधु के आशीर्वाद से पानी भी निर्मल एवं अत्यन्त मधुर निकला जिसने अहीरों को भी उस कुँए पर आने को प्रेरित किया। बहिन रुक्मा के दृढ़ प्रतिज्ञ भाई बालकृष्ण के पुत्र नैनसुख को ४० वर्ष की आयु तक कोई सन्तान न हुई तब उन्होंने अपने भाई नौनंदराम के पुत्र जानकीप्रसाद को ही पुत्र मान लिया। प्रभु कृपा से निराशा में से आशा का अंकुर उगा और नैनसुख के नयनाभिराम पुत्र शिवदयाल का जन्म हुआ। बालक शिवदयाल

का अत्यन्त स्नेह से पालन-पोषण हुआ। पर, दैव गति निराली है। बालक सवा वर्ष की आयु में पितृहीन हो गया और समस्त रक्षण का भार माता पर ही आ गया। शनैः शनैः बालक ६ वर्ष की अवस्था का हो गया। ग्राम में कोई पाठशाला नहीं थी अतः छोटा बालक भोजन की पोटली बाँधकर ४ मील दूर नारनौल में पढ़ने को जाने लगा। हर प्रकार की कठिनाई सहते हुए अभी अक्षर ज्ञान ही हुआ था कि १० वर्ष की आयु में ही मातृहीन भी हो गया। अब कोई सहारा न रहा। विवश होकर बालक को कानपुर अपने मामा के यहाँ जाना पड़ा। पर मातृ-पितृ हीन बालक उपेक्षा की दृष्टि से ही देखा जाने लगा। अन्त में अपने पैरों पर ही उठने का व्रत लिया और नारनौल आकर मौलवी साहब से उर्दू सीखने लगा। साथ ही ऐन-केन-प्रकारेण उदरपूर्ति भी करने लगा।

अब आपने उर्दू व पर्शियन का साधारण ज्ञान प्राप्त कर लिया था। आपकी गुरुभक्ति अनुकरणीय थी। मौलवी साहब उन्हें पढ़ाते थे अतः उनकी सेवा करना अपना परम धर्म समझते थे। उनके लिये नित्य ही अपनी डोलची से उनका पानी भरते और फिर ब्राह्मण के संस्कारों की प्रधानता के कारण वे उस डोलची को अग्नि में डालकर उसे शुद्ध कर फिर स्वयं अपने उपयोग में लाते थे। कुछ दिन बाद यह पता चलने पर कि उनके नारनौल के गुरु आजकल पटियाला हैं अतः वे अंग्रेजी का अध्ययन करने की इच्छा से उनके पास पटियाला चले गये। यहाँ उन्हें अपना भरण-पोषण स्वयं करना था, अन्य कोई सहारा न था। यह कठिनाई उन्हें व्यथित करती थी पर वे थे साहसी तथा अदम्य उत्साही। साथ ही स्वाभिमानी इतने थे कि माँगकर कोई भी वस्तु किसी से नहीं लेते थे। हाँ, यह गुण उनमें सर्वोपरि था कि वे अपनी सेवा से गुरुजनों के सदैव कृपापात्र बने रहते थे। पटियाला के जिस स्कूल में वे अध्ययन करते थे वहां के प्रधान अध्यापक उन पर इतने प्रसन्न थे कि उन्होंने

स्कूल के विश्राम की अवधि में इन्हें खाने की सामग्री लाकर उसे छात्रों में विक्रय करने का आदेश दिया तथा एक हलवाई को उन्हें सामग्री देने और बची हुई को उनसे वापिस ले लेने को कह दिया था। खाद्य सामग्री की बिक्री से जो आय होती थी उससे आपकी उदरपूर्ति होने लगी तथा पढ़ाई का व्यय भी चलने लगा। फिर आप उर्दू के साथ अंग्रेजी भी पढ़ने लगे। इस प्रकार आठवी कक्षा तक का अध्ययन कर लिया और पंजाब में ही अमीन के पद पर काम करने लगे। लगभग २० वर्ष की आयु में आपका पाणिग्रहण संस्कार शिमला ग्राम के ब्राह्मण कृषक परिवार में उत्पन्न सरियाँबाई के साथ सम्पन्न हुआ। विवाह के उपरान्त आप ग्वालियर राज्य में अपने निकट के मित्र बाबू शिवबक्श जी के साथ आ गये और नरवर में डाक विभाग में आप सबपोस्टमास्टर हो गये।

आपको बालक-बालिकाओं के शिक्षण से बहुत प्रेम था। उन दिनों में जबकि कन्याओं की शिक्षा में पढ़े लिखे लोग तक हिचकते थे तब आपने कन्या धर्मवर्द्धिनी सभा की शाखा को नरवर में जन्म दिया। कन्या पाठशाला में छात्रायें आती नहीं थीं यह बड़ी समस्या थी। अतः स्वयं से ही श्रीगणेश करने को उन्होंने अपनी पुत्री तथा एक वैश्य मित्र की पुत्री, केवल दो कन्याओं से पाठशाला प्रारंभ कर दी। अध्यापिकायें उस काल में मिलती ही न थी। आपने इस कठिनाई को हल करने को एक विलासोबाई नामक गरीब विधवा ब्राह्मणी को स्वयं पढ़ाकर तैयार किया, जिससे उसकी उदर-पूर्ति हुई तथा कन्या पाठशाला भी चलने लगी। दो चार निर्धन छात्र सदैव आपसे शिक्षा प्राप्त करते रहते थे और उन्हें वे कहीं न कहीं धन्धे से लगा दिया करते थे। इस प्रकार आदर्श जीवन व्यतीत करते हुए आपका डाक विभाग का सेवाकाल समाप्त हुआ और आप पेन्शन पर रिटायर हो गये।

शेष जीवन आपने सत्संग एवं पठन-पाठन में व्यतीत किया।

पेन्शन लेने के बाद आपने ब्रह्मचर्य विद्यालय नामक संस्था को शिवपुरी में जन्म दिया जहाँ धार्मिक व राष्ट्रीय भावना छात्रों में भरी जाती थी। आप अपनी निजी विचारधारा रखते थे और उस पर अटल रहते थे। 'जिस काम के करने में लज्जा, शंका व भय न हो वही करने योग्य काम ही धर्म है' यह थी उनकी परिभाषा धर्मयुक्त कार्य की। इस प्रकार आदर्श जीवन व्यतीत कर आश्विन शुक्ल १ सन १६२६ को प्रातः लगभग ७ बजे छात्रों की ईश-प्रार्थना सुनते-सुनते अपनी जीवनलीला समाप्त कर आप परलोक सिधारे।

श्रीमती सरियाँबाई–पूज्य माताजी

श्रीमती सरियाँबाई अपने गृह-कार्य में दक्ष तो थीं ही पर उनका श्रमपूर्ण जीवन अत्यन्त सराहनीय था। आपको बच्चों व महिलाओं के साधारण रोगों का अच्छा ज्ञान था जिनकी चिकित्सा साधारण उपचार से ही वे कर दिया करती थीं। विशेषकर नल, धरण आदि नसों को स्थान से सरक जाने पर उन्हें ठीक हालत में कर देना और वह भी अत्यन्त हल्के हाथ से जिससे रोगी को विशेष कष्ट न हो, उन्हें भगवान् की देन थी। पुराने ढंग से पले रहने पर भी आप यदि किसी अस्पृश्य को भी कष्ट होता था तो वे उसे दूर कर दिया करती थीं। वे समाज की परवाह न कर दुःखी का कष्ट दूर करना ही श्रेयष्कर समझती थीं। यहाँ एक घटना का उल्लेख करना असंगत न होगा। यह घटना उस समय की है जबकि हरिजनों को छू लेना पाप समझा जाता था। एक दिन एक गरीब जाति की अछूत स्त्री आई। उसे नाभि की नस सरक जाने से भारी पीड़ा थी। बेचारी स्त्री द्वार के पास ही बैठकर बिलख-बिलख कर रोने लगी। इनसे रहा नहीं गया। उन्होंने उससे रोने का कारण पूछा। उस स्त्री ने रोते-रोते कहा-'मैं अछूत हूँ, मेरा कष्ट कौन दूर करेगा? पेट की नस सरक जाने की पीड़ा से अत्यन्त व्याकुल हूँ। मेरा पेट कौन सूतेगा?' सरियाँबाई का जी भर आया और उन्होंने कहा-"घबरा मत, धीरज रख

मैं कपड़े बदल कर आती हूँ।" वे झटपट ऊपर गईं और एक धोती पहिनकर व थोड़ा तेल लेकर दरवाजे के निकट बैठी स्त्री के पास गई। उसे लिटाकर तेल से पेट की मालिश कर और दीपक लगाकर उसकी नस यथा स्थान कर दी। स्त्री हँसती-हँसती धन्यवाद देकर यह कहती हुई विदा हुई कि 'भगवान् सब का है।'

आपने दीर्घ आयु १०७ वर्ष की पाई। आपकी अन्तिम अवस्था अनन्य भक्तिमय बीती। आपको यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि 'मैं कुछ नहीं करती, मुझसे मेरे समस्त कार्य भगवती ही करा रही है' इस प्रकार पूर्ण आत्मसमर्पण की भावना से ओतप्रोत आपकी १३ मई १९७५ को ग्वालियर में जीवन लीला समाप्त हुई।

ऐसी परोपकारपरायणा माता सरियाँबाई व कर्त्तव्यपरायण एवं धार्मिक पिता पं. शिवदयालजी की पाँच सन्तानें थीं। चार पुत्र दयाराम, नारायणदास, देवीलाल, भगवानलाल हैं व एक कन्या शरबतीबाई है। मैं अपने माता-पिता की तीसरी सन्तान हूँ। मेरा जन्म मार्गशीर्ष कृष्ण ३० रविवार सम्वत् १९६२ को दिन के १ बजे ऐतिहासिक नगरी राजा नल की राजधानी नरवर में हुआ जो विंध्याचल पर्वत की शृंखला पर स्थित है। यह स्थान आजकल मण्डल शिवपुरी (म.प्र.) का एक दर्शनीय ऐतिहासिक स्थान है।

शैशव अवस्था

मैं जन्म से ही शरीर से स्वस्थ एवम् मोहक लगता था। सचमुच भविष्य में जिस व्यक्ति को जैसा अभिनय करना होता है उसके वैसे ही संस्कार बचपन से ही पनपने लगते हैं, यह यथार्थ है।

नरवर के विट्ठल मंदिर में दधिलीला हुआ करती थी। श्रीकृष्ण का अभिनय प्रायः मुझको ही करना होता था। नन्हा सा बालक मैं छोटी सी लकुटिया से जब दही की हंडी को फोड़ता हूँगा तब मेरे मस्तिष्क में

से कैसी निर्मल धारा निकलती होगी इसे भुक्तभोगी ही अनुभव कर सकता है।

बाल-क्रीड़ा से प्रमुख स्मरणीय घटना जो मुझे स्मरण है वह यह थी कि मैं अपने जैसे ही शिशु तुल्य एक कपड़े के पुतले को सदा अपने बगल में भगवान् समझकर रखता था। नरवर में पोस्ट-आफिस के नीचे बाजार भरता था। मैं अपने पुतले को खाद्य-पदार्थ दुकानदारों से लाने में हिचकता न था। लोग भी मुक्त हस्त से सामग्री दे देते थे। एक तो मैं पोस्ट-मास्टर साहब का बालक था और दूसरे मेरी वाचालता लोगों को आकर्षित करती थी।

शनैः शनैः मैं ८ वर्ष का हुआ। यज्ञोपवीत संस्कार के लिये मुझे तथा मेरे बड़े भाई दयाराम जी को पिताजी ने शिवपुरी भेजा था। शिवपुरी में पूज्य पिताजी के रिश्ते में बड़े भाई रहते थे। उनके तीन पुत्रों के साथ ही हमें यज्ञोपवीत दिलाने का कार्यक्रम था।

नरवर से शिवपुरी तक हमें बैलगाड़ी से रात्रि में यात्रा करनी थी। छोटे सतनवाड़े पर सूर्योदय हुआ, भगवान् भास्कर उदय हुये। गाड़ी के साथ एक साँई भी अपनी घोड़ी पर शिवपुरी आ रहा था। रात्रि के जागरण से उसे नींद आ रही थी। वह चाहता था कि गाड़ी में से कोई उसकी घोड़ी पर बैठकर चले और उसे गाड़ी में बैठने को कह दे। मैंने कौतूहल-वश घोड़ी पर बैठना स्वीकार कर लिया। साँई गाड़ी में बैठ गया और मैं घोड़ी पर सवार हो गया। प्रातःकाल की शीतल, मन्द, सुगन्धित हवा चल रही थी और मैं घोड़ी की सवारी पर था और वह भी पहली बार, फिर क्या था ! आनन्द की लहरें मेरे मन में उठने लगीं। मैंने घोड़ी को गाड़ी के आगे कर लिया था और कल्पना जगत में विचरते हुए अकेले ही पुलकित होकर मैं गुनगुनाते हुए आगे बढ़ने लगा। मैं कल्पना करता था कि "जब बड़े होंगे तो मोटर रखेंगे और हम बड़े आदमी बनेंगे। सिर पर टोप रखे हुए जब दौरे पर जावेंगे तो नरवर का दौरा करेंगे। जब मोटर

नरवर से गुजरेगी तो लोग खड़े हो जावेंगे और प्रणाम करेंगे। जब मोटर बड़ीबाई (उस मकान की मालकिन जहाँ मेरे पोस्टमास्टर पिताजी उस समय सपरिवार रहते थे) के घर के सामने पहुँचेंगी तो मोटर रोक देंगे और झट घर में भीतर घुस जावेंगे। लोग डर जावेंगे और अवाक् रह जावेंगे कि ये कौन बाबूजी हैं। बड़ी बाई भी घबरा जावेंगी और मन में समझेंगी कि न जाने यह कौन सा साहब है जो यहां आया है। इतने में ही झट टोप उतारकर मैं बड़ीबाई के चरण छू लूँगा। बाई पूछेंगी कि 'भैया तुम कौन हो?' तो मैं उत्तर दूँगा-'क्यों भूल गई, मैं तुम्हारा मिश्री हूँ।' मेरा प्रेम का नाम यही था। बस बड़ीबाई गद्गद होकर गले लगा लेंगी और कहेंगी कि 'अरे भैया, मेरा मिश्री कितना बड़ा आदमी हो गया, पर इसे अभिमान बिल्कुल नहीं है और अपने बड़े-बूढ़ों को भूलना तो दूर रहा कितना उनका भक्त है।' और बोलेंगी-"ऐ मेरे लाल तुम जुग-जुग जीओ।"

यह थी मेरी बचपन की विचारधारा जो समय पाकर अपनी पूर्णता की ओर अग्रसर हुई।

किशोर अवस्था

शनैः-शनैः मैंने किशोर अवस्था में प्रवेश कर लिया। यह अवस्था ऐसी होती है जिसमें बालक घर की चार दीवारी को लाँघकर बाहर आता है और अपनी भी कुछ सत्ता स्पष्ट रखने लगता है। इसी अवस्था में मस्तिष्क में घूमने वाले विचार उपयुक्त खाद व पानी पाकर पुष्ट बनते हैं और इनके अभाव में अस्तित्वहीन हो जाते हैं। अतः इस सुकुमार अवस्था में संस्कार दृढ़ करने के हेतु पालकों द्वारा आस-पास के वायु मण्डल को तदनुकूल निर्मित किया जाना अत्यन्त आवश्यक है, पर खेद के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि मेरी यथोचित देखरेख न हो पाई। एक तो पिताजी को डाक विभाग की सेवा करने से ही अवकाश न मिलता था और माताजी का घर से बाहर क्षेत्र न था। बाहरी वायुमण्डल अत्यन्त

दूषित था और उसी वायुमण्डल के मित्रों में मुझे अधिक समय बिताना पड़ा। नरवर में स्कूल का भी वायुमण्डल आकर्षक न था। अध्यापक छोटी-छोटी त्रुटियों पर इतना शारीरिक दंड देते थे कि बालक उनसे बचने का प्रयत्न करते थे। ऐसी दशा में आवारा फिरना, बीड़ी-सिगरेट पीना, झूठ बोलना, चोरी करना, कुसंग आदि में पड़ जाना आदि बुरी आदतों को पनपने का यथेष्ट मौका मिल जाता था। अतः मुझमें भी कुछ-कुछ बुरी आदतें हो गईं थीं जैसे सिगरेट पीना आदि। यहाँ इतना विवरण आवश्यक जान पड़ता है कि मैं जहाँ कुमार्गगामी होने लगा था वहाँ एक संस्कार मुझमें सुन्दर था, वह यह कि यदि कोई व्यक्ति प्रेम से मुझे किसी ठीक बात को समझाता था तो फिर मैं वैसा आचरण करने का प्रयास करता था। उदाहरणार्थ मैं हाथों में चूड़े व कानों में बाला पहिनता था। पिताजी के एक मित्र मेलाराम ठेकेदार थे। उन्होंने एक दिन प्रेम से समझाया कि 'देखो, इन आभूषणों को पहिनने से जहाँ-जहाँ चूड़े व बाला हैं वहाँ-वहाँ मैल जमा हो गया है। ये वस्तुएँ शरीर को साफ नहीं रहने देतीं अतः तुम ठीक समझो तो पिताजी से कहकर इन्हें उतरवादो।' मुझे बात घर कर गई और पिताजी से कहकर आभूषण उतरवा दिये और फिर कभी नहीं पहिने। यही एक गुण ऐसा था जो मुझे अधिकांश कुटेवों को छुड़ाने में सहायक हुआ।

एक बार रामलीला करने वाले नरवर आये। पंडाजी के मंदिर में ठहरे। रामलीला कई दिन तक हुई। राम का स्वरूप रखने वाला बालक खुलकर बोलने वाला व मिलनसार था। मेरा उससे प्रेम हो गया। रामलीला समाप्त हुई और मण्डली जंगल के कच्चे रास्ते से अमोला को रवाना हो गई। मुझे इस बात का पता तब चला जबकि मण्डली १०-१२ मील निकल गई होगी। मैं अपने नव निर्मित मित्र जो राम बनता था उससे चलते समय न मिल सकता था। अतः मैंने तथा मेरे एक अन्य मित्र रामगोपाल

ने अमोला जाने का संकल्प किया और चल दिये। न खाने-पीने को कुछ था और न रास्ते की जानकारी थी। अब जंगल में भटकने लगे। पिताजी को किसी प्रकार पता चल गया और उन्होंने अपने विलेज पोस्टमैन चिन्टूलाल को हमारी तलाश में भेजा। उसने हमको ढूँढ़ लिया और समझाया कि "डरो मत कोई मारेगा नहीं। आगे ऐसा न करना। बाबूजी कुछ न कहेंगे। अब घर लौट चलो।" मेरे व मेरे मित्र के पास कोई चारा नहीं था, पर पिताजी क्रोध में बहुत अधिक दण्ड दे दिया करते थे अतः डर से भयभीत भी हो रहे थे। अन्ततोगत्वा पिताजी के सामने जैसे ही गर्दन झुकाकर मैं खड़ा हुआ कि मैंने रोना आरंभ कर दिया। पिताजी ने प्रेम से पुचकारा और भविष्य में बिना पूछे ऐसे काम न करने के लिये ऐसे ढंग से समझाया कि उस दिन के बाद फिर कभी ऐसी घटना घटने का संयोग न आया।

मई सन् १६१८ में पिताजी का स्थानान्तर लश्कर हो गया। लश्कर पहुँचने पर नरवर के दूषित वायुमण्डल से पृथक् होने पर भी संस्कारों में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। लश्कर में बालकों का रहन सहन और भी दूषित था। अन्तर इतना ही था कि नरवर का वायुमण्डल ग्रामीण था और लश्कर का शहरी। सन् १६१६ में पिताजी का पुनः स्थानांतरण शिवपुरी हो गया।

यहाँ मेरे जीवन में कुछ अन्तर आया। दोनों ही गुण और अवगुण लगभग समान रूप में आ गये। यहाँ आकर हिन्दी मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण की। कुछ स्वाभिमान भी पुनः जाग्रत हुआ। सुधार के भी विचार आने लगे। फलस्वरूप अपनी कक्षा के छात्रों की एक बालसुधारक सभा को जन्म दिया। इस सभा के संचालन से अपने दोषों पर मेरा स्पष्ट ध्यान जाने लगा और उनसे घृणा होने लगी। अब प्रत्यक्ष रूप से परिवार वालों से छिपकर सिगरेट पीने की कुटेव सर्वोपरि शेष थी। एक दिन मेरे मित्र

एकनाथ ने बड़ी गंभीरता से कहा–" भाई तुममें सब बातें तो अच्छी हैं, पर सिगरेट पीने की इस बुरी आदत को क्यों नहीं छोड़ते?" इस प्रकार एकनाथ जी की बात का असर हुआ फिर एम्बुलेंस कोर्स पढ़ने सरकारी अस्पताल में जब उस दिन गये तो डाक्टर साहब मलावरराम ने जहरों का पाठ पढ़ाते हुए तम्बाकू जहर की हानियों पर विशेष रूप से समझाया। फलस्वरूप दूसरे दिन प्रातःकाल ही सिगरेट, बीड़ी आदि को त्यागने का दृढ़ संकल्प किया और कोई अन्य मित्र बीड़ी न पिलादे इससे बचने को उस दिन एकान्तवास सा ही किया। उस दिन से यह दुर्गुण भी समाप्त हुआ। साथ ही स्कूल का अध्ययन भी लगभग समाप्त हुआ।

तरुण अवस्था

सन् १६२१ में मैं १६ वर्ष का हो गया उसी वर्ष मेरा पाणिग्रहण संस्कार पं. घासीराम मजिस्ट्रेट पोहरी के पुत्र पं. रामनारायण सबइन्सपैक्टर पुलिस की पुत्री भगवान् देवी से हुआ।

मेरे वैवाहिक संस्कार ने अब मेरे जीवन को स्वावलम्बी बनाने की ओर प्रेरित किया। इधर पिताजी की भी पेन्शन हो गई थी। इसी समय को-आपरेटिव बैंक शिवपुरी में सहायक एकाउन्टैन्ट के एक नये पद की जगह निकली। बैंक के ऑडीटर व मैनेजर दोनों ही से पिताजी का परिचय था। उन्होंने मेरी नियुक्ति इस पद पर करवा दी। एक वर्ष तक लगन से इस पद का कार्य किया। साथ ही प्रायवेट रूप से इंग्लिश मिडिल की परीक्षा भी उत्तीर्ण की। अब आगे अध्ययन की धुन सवार हुई और पद से त्याग-पत्र दे दिया। यही मेरी पहिली अर्द्ध-सरकारी नौकरी थी और यही अंतिम भी हुई।

आगे अध्ययन की दृष्टि से अपने छोटे भाई देवीलाल जी के साथ लश्कर जाने का मेरा निश्चय हुआ। श्री देवीलाल जी मेरे प्रत्येक कार्य में

दाहिने हाथ थे। वे सन् १६७१ में दिवंगत हो गये। अभी तक मुझे उनका वियोग खटकता रहता है। पर, दैव इच्छा बलवान है।

दोनों भाईयों की एक दिशा में निष्ठा और परस्पर का सहयोग

शिवपुरी में मैंने केवल मिडिल ही पास किया था। अतः मैं आगे अध्ययनार्थ लश्कर गया। मेरे छोटे भाई भी इस दृष्टि से कि दोनों भाई साथ-साथ रहेंगे तो सब तरह की सुविधा होगी मेरे साथ ही लश्कर आ गये थे। मैंने विक्टोरिया कालेजिएट हाईस्कूल में प्रवेश ले लिया। यहाँ दोनों भाई लगभग दो तीन माह ही रह पाये। एक तो घर से हमें बाहर रहना अच्छा न लगा और दूसरे भोजन बनाना हमें आता न था, अतः हमें बड़ी असुविधा अनुभव होती थी। इस बीच में पूज्य पिताजी को पं. गोपालकृष्ण जी द्वारा संचालित पोहरी भटनावर के आदर्श विद्यालय का परिचय मिला और हम दोनों भाई ग्वालियर से भटनावर आ गये। यहाँ भी परिस्थिति अनुकूल न पड़ी। तब यह निश्चय हुआ कि नारनौल भूपेन्द्र हाईस्कूल में अध्ययन ठीक हो सकेगा। मेरी बड़ी बहिन यहीं विवाहीं थीं। उनके माध्यम से भोजन बनाने की सुविधा ठीक रहेगी। अतः हम दोनों भाई नारनौल, हरियाणा आ गये। यहाँ यह लिखना असंगत न होगा कि मेरी व मेरे छोटे भाई देवीलाल जी की प्रकृति यद्यपि भिन्न-भिन्न थी तथापि हमारे उद्देश्य एक ही रहते थे। अतएव बचपन से लेकर इस समय तक भी दोनों भाई कन्धे से कन्धा भिड़ाकर शैक्षणिक क्षेत्र में तथा राष्ट्रीय सेवा करने में कार्य करते थे। लगभग एक वर्ष नारनौल रहे और सन् १६२५ में एस.एल. सी. परीक्षोत्तीर्ण होकर फिर शिवपुरी आ गये। यहाँ पिताजी कुछ छात्रों को पढ़ाते ही थे, अतः यही निश्चय हुआ कि पिताजी तथा हम दोनों भाई तीनों मिलकर अध्यापन का ही कार्य करें।

ब्रह्मचर्य विद्यालय

सन् १६२५ में पूज्य पिताजी ने ब्रह्मचर्य विद्यालय को जन्म दे दिया था। स्कूल का स्थान आर्य समाज मंदिर था। धनी छात्रों से ट्यूशन ली जाती थी तथा निर्धन छात्र निःशुल्क पढ़ते थे। सहयोग के लिये एक शास्त्रीजी को रख लिया था। सन् १६२६ में मैंने मैट्रिक परीक्षा प्रायवेट रूप से दिल्ली विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर ली थी। फलतः ब्रह्मचर्य विद्यालय के प्रधानाध्यापक का कार्य मुझ पर ही आया। पिताजी छोटे बालकों को पढ़ाने में बड़े कुशल थे और हम दोनों भाईयों को प्रभु ने यह गुण दिया था कि जितनी हममें योग्यता थी उतनी योग्यता के लिये पढ़ने वाले छात्रों को भी परीक्षा उत्तीर्ण करा देते थे। परिणामस्वरूप उसी वर्ष पंजाब यूनीवर्सिटी से श्रीनिवासदास जी गोयल को (जो उनके पूज्य पिताजी के देहावसान के उपरान्त प्रोप्राइटर, हनुमान मिल्स हुए) द्वितीय श्रेणी में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कराई। अब वे भी दिवंगत हो चुके हैं। श्री देवीलाल जी के सहयोग से मिडिल परीक्षा में बैठने वाले छात्र शत-प्रतिशत ही उत्तीर्ण हो जाते थे। अब विद्यालय ने विशिष्ट ख्याति प्राप्त करली। उल्लेखनीय बात तो विद्यालय की यह थी कि यह विद्यालय छात्रों को केवल परीक्षोत्तीर्ण ही नहीं कराता था पर यहाँ छात्रों में राष्ट्रीय भावना भी कूटकूट कर भरी जाती थी। बाबू वृन्दासहायजी जो म.प्र. में एम.एल.ए. हो गये थे, पर भी इस विद्यालय के संस्कार स्पष्ट दिखते थे। अब वे भी दिवंगत हो चुके हैं।

ब्रह्मचर्य विद्यालय का कार्यकाल १६२५ से १६२८ तक लगभग ४ वर्ष रहा। यह वह काल था जबकि भारत को अंग्रेजों से स्वतंत्र कराने की देश में ज्वाला धधक रही थी। छात्रों में यह अग्नि अधिक से अधिक प्रज्वलित हो सके इस दृष्टि से छात्रों को खेल भी ऐसे ही खिलाने की विद्यालय ने योजना बनाई थी। शिवपुरी से लगभग २ मील दूर हश्मतकुण्डी शिवपुरी के सुन्दर प्राकृतिक स्थानों में से एक है। नदी का कलकल नाद

करते हुए जलप्रवाह, सघन जंगल, शेर आदि हिंसक जन्तुओं का निवास स्थान सभी दृष्टि से अनुकूल था। एक दुर्भेद्य स्थान पर ध्वज लगाया जाता था। तरुण व जोशीले छात्र शिक्षकों सहित दो भागों में विभक्त कर दिये जाते थे। एक भाग अंग्रेजों का प्रतिनिधित्व करता था और दूसरा भाग भारतीयों का। शक्ति का पूर्ण उपयोग कर दोनों विभाग परस्पर संघर्ष करते थे। इस संघर्ष में शरीर पर भी प्रचुर मात्रा में आघात हो जाते थे। क्रीड़ांगण युद्धभूमि में परिणत हो जाता था। जीवन रक्षा का ध्यान अवश्य रखा जाता था, अन्यथा सब युद्ध का दृश्य ही होता था। खेल समाप्ति पर छात्र यह भाव लेकर घर आते थे कि अंग्रेजों को भारत से निकालकर ही रहेंगे। देश स्वतंत्र होकर ही रहेगा आदि।

स्वावलम्बन कीं ओर प्रयास

मेरी तथा मेरे लघुभ्राता श्री देवीलालजी की यह प्रबल इच्छा थी कि छात्रों की रुचि नौकरी से हटकर स्वतंत्र रूपेण जीवन व्यतीत करने की ओर प्रवृत्त हो। अतः इस दृष्टि से विद्यालय के छात्रों द्वारा एक बालसुधारक सभा विद्यालय में ही स्थापित की गई। इस संस्था द्वारा स्वावलम्बी होने का प्रयोग किया गया। छात्रों की संख्या लगभग ४०-५० रहा करती थी जिसमें लगभग आधे छात्र पाठन शुल्क देते थे और शेष निःशुल्क। सभा की बैठक प्रति सप्ताह होती थी जिसमें स्वावलम्बन व सदाचार शिक्षा पर भाषण, रेसीटेशन आदि होते थे और जो छात्र दे सकते थे वे प्रसन्नता से एक-एक पैसा देकर कोष एकत्रित करते थे। प्रत्येक बैठक में आठ आना से बारह आना तक और कभी-कभी एक या डेड़ रुपया तक आ जाता था। कोषाध्यक्ष छात्र श्रीनिवास थे जो आगे चलकर हनुमान मिल्स के व्यवस्थापक बने। इस संग्रह से छात्रों की आवश्यक वस्तुओं का भण्डार खोला गया। और वस्तुओं का क्रय-विक्रय

किया जाने लगा। जो लाभ होता वह पूँजी में ही सम्मिलित होता रहता था। इस प्रकार लगभग ४ वर्ष के विद्यालय के जीवन में एक-एक पैसे की दुकान ने खादी भंडार का रूप धारण कर लिया जिसकी लागत ५००) रु० से अधिक होगई थी।

दो मूल्यवान अनुभव

एक सम्पन्न घर का लक्ष्मीचन्द नामक छात्र कक्षा ८ में पढ़ता था। वह कुशाग्र बुद्धि एवं सदाचारी था। गुरुसेवा में उसकी लगन सराहनीय थी। नित्य विद्यालय को स्वच्छ करना तो उसका स्वाभाविक कार्य था। एक दिन वह अपने कहे अनुसार घर से वापिस नहीं आया। अध्यापक तो समझते थे कि वह दूसरे दिन आजावेगा किन्तु बालक के ह्रदय में अपने असत्याचरण की झिझक बैठ गई । अध्यापकों की ओर से उसकी झिझक मिटाने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया और सम्भवतया उनकी समझ में भी यह नहीं आया कि सुशील बालक असत्याचरण करके अध्यापकों के सामने नहीं आरहा है। इसी कारण उसके स्वाभिमान को ठेस पहुँची है। पाँच-सात दिन तक छात्र न तो किसी अध्यापक से मिला और यदि किसी साथी छात्र से मिला तो रास्ता काटकर घर चला जाता था। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया बालक की वृत्ति संस्था से ही न हटने लगी वरन् उसके पढ़ने का भी अन्त होगया। यदि वह बालक पाठ्यक्रम को जारी रखता तो निस्संदेह राष्ट्र कल्याण में योग देने में एक रत्न सिद्ध होता। इस घटना ने अध्यापकों को यह पाठ सिखाया कि भविष्य में यदि ऐसी घटना घटे तो तत्काल छात्र से मिलकर उसकी झिझक मिटा देना चाहिये। थोड़ी सी शिथिलता से, बिलंब हो जाने से बड़ा अनहित होजाने की संभावना है।

(२) एक दूसरे कुशाग्र बुद्धि एवं होनहार सच्चरित्र बालक श्रीनिवास मैट्रिक कक्षा के थे। यह भी सम्पन्न वैश्य साहूकार के पुत्र थे। मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद इनके आगे के अध्ययन का प्रश्न

उपस्थित हुआ। यह बालक जितना घरवालों का प्रिय था उतना ही अध्यापकों को प्रिय था। ऐसा अनुभव होता था कि यह बालक भविष्य में देश के प्रमुख व्यक्तियों में से एक बनके रहेगा। छात्र के पालक चाहते थे कि छात्र को आगे अध्ययन को ग्वालियर कालेज में भर्ती करा दिया जाय किन्तु मैं चाहता था कि वह कामर्शियल कॉलेज देहली में भरती हो। उन दिनों ग्वालियर का क्षेत्र रियासत होने के कारण अत्यन्त संकुचित था। राष्ट्रीय भाषण सुनने का अवसर ही नहीं होता था और देहली थी ब्रिटिश राज्य की राजधानी, जहाँ महात्मा गाँधी, पं० नेहरू, श्री सुभाष आदि चोटी के नेताओं के भाषण प्रायः होते ही रहते थे। जनता का खून उबलता ही रहता था। अतः इस गरमागरम वायुमंडल का संस्कार छात्र में घर करले, यह हठ था। इस हठ की जड़ स्वाभाविक नहीं थी उसमें दूसरों की नकल थी। पं. गोपालकृष्ण पुराणिक, आदर्श विद्यालय को चलाते थे। राष्ट्रीय संस्कार डालने की उस समय इस प्रान्त की वह अद्वितीय संस्था थी। पूज्य पुराणिकजी की त्यागवृत्ति व लगन अद्वितीय थी। राष्ट्रीय विचारों वाले सज्जनों को अनुप्राणित करने वाली संजीवनी थी। आदर्श विद्यालय का सर्वश्रेष्ठ छात्र पूज्य पं. जी की दृष्टि मे श्री रामगोपालजी थे और वे इस छात्र को अधिक से अधिक ऊँचा उठा हुआ देखना चाहते थे। उसे उन्होंने देहली कालेज में ही भरती कराया था। इधर आदर्श विद्यालय से मेरा परिचय बढ़ने लगा। मेरी श्रद्धा अपार होगई इतना ही नहीं मैं उनके मार्ग पर ही चलने को अंध-विश्वासी हो गया। अतः जो मार्ग पूज्य पुराणिकजी श्री रामगोपाल को निर्धारित करते थे उससे कम मैं भी अपने छात्र श्रीनिवास के लिये कैसे रख सकता था। श्रीनिवास व श्री रामगोपाल की परिस्थिति में बहुत बड़ा अन्तर था। श्रीनिवास धनी परिवार के बालक थे और रामगोपाल निर्धन परिवार के। श्री रामगोपाल सब कष्ट सहन कर परिवार का विशेष ध्यान न रख इच्छा या अनिच्छा से पूज्य पुराणिकजी के आदेशानुसार कार्य करते थे। उनके

पालन-पोषण, अध्ययन का सब व्यय आदर्श विद्यालय ही सहन करता था। जबकि श्रीनिवासजी एक प्रतिष्ठित साहूकार के बालक के नाते पालन-पोषण व अध्ययन के लिये ब्रह्मचर्य विद्यालय पर अपेक्षित नहीं थे। दूसरे उनके स्वभाव में एक बड़ी कमजोरी थी जिसका अनुभव उस समय न हो सका वह यह कि इधर तो वे विद्यालय को प्रसन्न करने हेतु विद्यालय के अनुकूल वर्ताव का विश्वास दिलाते थे पर अपने परिवार वालों के सामने अपने स्पष्ट विचार न रखकर उनको प्रसन्न करना चाहते थे। परिणामस्वरूप वे विद्यालय तथा परिवार दोनों के बीच में पिस गये। यद्यपि एक बार तो साहस करके विद्यालय का समर्थन किया भी और मेरी इच्छा के अनुसार कमर्शियल कॉलेज देहली में प्रवेश तक पा लिया परन्तु धनी परिवार के लाड़चाव में पला बालक घर से लगभग तीन चार सौ मील दूर उन सबसे पृथक् रहकर एक नवीन वायुमंडल में पलकर उनसे सदैव को पृथक् हो जाने की ठेस को न सह सका। यद्यपि विद्यालय द्वारा उसके ऊपर होने वाले सब खर्च को वहन करने का आश्वासन दे दिया गया था, पर फिर भी उसे कॉलेज छोड़ना ही पड़ा। यदि बालक को पालकों की इच्छानुसार ग्वालियर रखा जाता तो बहुत कुछ सम्भावना थी कि जो बालक साधारण मैट्रिक तक की योग्यता से शिवपुरी नगरपालिका व मंडी कमेटी का प्रसिद्ध प्रतिष्ठित संचालक बन सकता था वह सचमुच अधिक योग्य होने पर एक बड़े क्षेत्र का भी संचालन कर सकता था। इस घटना ने स्पष्ट रूप से भान करा दिया कि अपनी इच्छानुसार आगा-पीछा सोचकर गंभीरता से आगे कदम बढ़ाना चाहिये। दूसरों की अंधे बनकर नकल करने से अपना विकास ही अवरुद्ध हो जाता है। यद्यपि श्री निवासजी का अध्ययन समाप्त होगया था फिर भी उनमें विद्यालय की पूर्व जैसी भावना जीवन-पर्यन्त रही और वे जितनी हो सकती थी राष्ट्रसेवा में भी सदैव तत्पर रहने की चेष्टा करते थे।

खादी से प्रेम

अब ब्रह्मचर्य विद्यालय की गणना शिवपुरी मंडल की ख्याति प्राप्त संस्थाओं में होने लगी थी। विद्यालय के सौभाग्य से उज्जैन के लब्धप्रतिष्ठ, कर्मठ जनसेवी श्री त्र्यंबक दामोदर पुस्तके से उसका परिचय हुआ। श्री पुस्तके जी गांधी विचार-धारा के सच्चे पुजारी थे। उनकी खादी के लिये सूत कातने में श्रद्धा अगाध थी। उन्होंने विद्यालय को उपयुक्त क्षेत्र समझकर कुछ तकलियाँ मँगवाकर दीं और खादी पहिनने व छात्र तथा अध्यापकों को तकली चलाने की प्रेरणा दी। विद्यालय में राष्ट्रीय संस्कार तो थे ही अतः श्री पुस्तके द्वारा दी गई प्रेरणा को साकार होने में विलम्ब न लगा। राज्य की अकृपा की चिन्ता न कर विद्यालय में विधिवत् तकली घूमने लगी। पूज्य पिताजी भी अत्यन्त राष्ट्रप्रेमी तो थे ही। एक दिन मेरे लघुभ्राता श्री देवीलालजी को नये नीले रंग के गरम सूट में सजे देखकर उन्होंने कहा कि- "यदि तुम शुद्ध श्वेत खादी के वस्त्र पहिनकर देखो और उसकी तुलना अपने इस सूट को पहिने हुए रूप से करो तो तुम्हें प्रतीत होगा कि यह नीले रंग का साहब का रूप राक्षसी है और श्वेत खादी का देव तुल्य।" बात की बात में श्री देवीलाल जी ने उस नीले सूट को उतारकर मोटी श्वेत खादी की एक मोटी घुटने तक की धोती व चादर जो उस समय बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती थी लपेट ली और पूछा कि "पिताजी मैं अब कैसा लगता हूँ?" पिताजी ने कहा- शुभ 'देवतुल्य'। बस खादी पहिनने का क्रम श्री देवीलाल जी से आरम्भ हुआ।

अब हम दोनों भाईयों तथा बड़े-बड़े छात्रों ने निश्चय किया कि विदेशी वस्त्रों का पहिनना समाप्त करना चाहिये और खादी ही पहिनना चाहिये। एक तो उस समय इतना साहस ही नहीं था कि शहर में विदेशी वस्त्र की होली जला सकें दूसरे दिखावटीपन की ओर रुचि भी नहीं थी। अतः एकान्त में हश्मतकुंडी पर सब लोग एकत्रित हुए। एकत्रित सब

लोगों ने एक-एक वस्त्र खादी पहिनने का सोचा अतः एक-एक विदेशी वस्त्र रखकर होली की सामग्री एकत्रित की पर श्री देवीलालजी ने तो अपना पूरा नीला नया गरम सूट ही होली में रख दिया और विदेशी वस्त्रों की होली जला दी गई। उस दिन से शनैः-शनैः शुद्ध खादी का प्रयोग विद्यालय में होने लगा।

पत्नी से सुधार का आग्रह

इस धारणा से कि जब तक पत्नी भी खादी धारण नहीं करेगी तब तक स्वयं का खादी पहिनना आधा ही है। अतः पत्नी से भी अनुरोध किया कि वह खादी को अपनावे। किन्तु, गृह की चहार दीवारी के अन्दर रहने व रूढ़िवादी संस्कारों में पालन-पोषण होने तथा शासक वर्ग के राजकीय संस्कार प्रबल होने से सफलता नहीं मिली। यद्यपि खादी की धोतियाँ खरीदीं गई थीं और कभी-कभी उनका उपयोग भी आरम्भ हो गया था। पर वह केवल पति की प्रसन्नता हेतु। अतः यह प्रयोग असफल ही रहा। हाँ, इतना अवश्य है कि पत्नी का १८ वर्ष की अल्पायु में ही देहावसान हो जाने से प्रयत्न करने का अधिक अवसर भी न मिल सका, परन्तु पर्दा-प्रथा समाप्त करने का व अपने श्वसुर से बोलने का आरम्भ अवश्य हो गया था। परिणामस्वरूप मेरे पूज्य पिताजी से उन्हें रामायण का साधारण ज्ञान प्राप्त होने लगा था।

आगे अध्ययन तथा समाज के अवांछनीय तत्व से संघर्ष

यद्यपि मेरा पंजाब विश्वविद्यालय की एस.एल.सी. परीक्षोत्तीर्ण कर अध्ययन समाप्त सा ही हो गया था और अध्यापन तथा समाज सुधार कार्य ही प्रमुख रह गया था किन्तु आदर्श-विद्यालय के संपर्क तथा आगे अध्ययन की दबी इच्छा के उभरने से दिल्ली विश्वविद्यालय की मैट्रिक परीक्षा का प्रायवेट रूप से प्रवेश-पत्र भर दिया गया। प्रभु की असीम कृपा से प्रथम श्रेणी प्राप्त कर सुन्दर सफलता भी प्राप्त हुई जिसने अब आगे के अध्ययन करने हेतु अधीर बनाना प्रारम्भ कर दिया। इधर

विद्यालय को कट्टर आदर्शवादी बनाने के लिये सदाचार आदि के नियम भी कठोरता से पालन कराये जाने लगे। परिणामस्वरूप विरोधी छात्रों के उपद्रव आरम्भ होगये। सुशील छात्रों का घर से विद्यालय तक आना कठिन हो गया। नित्य कोई न कोई छात्र को पीटा जाना, विद्यालय के पौधों को उखाड़ फेंकना, कमरों के काँच तोड़ देना, अपशब्दों द्वारा ताने आदि मारने की दैनिक नई-नई घटनाओं से जी व्याकुल रहने लगा और बेचैनी बढ़ने लगी। ट्यूशन लेकर पढ़ाने से घृणा होने लगी। ऐसा प्रतीत होता था कि मानों अध्यापकों को छात्र फीस क्या देते हैं वे उन्हें अपना क्रीतदास समझते हैं। उनकी दृष्टि से उनके उचित-अनुचित सभी व्यवहारों को प्रायवेट अध्यापकों को सहना चाहिये। इस प्रकार एक ओर तो यह संघर्ष चल रहा था और दूसरी ओर आदर्श-विद्यालय की ओर जाने के अनुकूल वायुमंडल निर्माण हो रहा था। आगे का अध्ययन, राष्ट्रीय संस्कार पनपने का सुन्दर क्षेत्र आदि पोहरी जाने को खींच रहे थे। इस बात का ध्यान नहीं था कि सुधार बड़ी धीरे-धीरे हुआ करता है। पर, युवावस्था का जोश होने के कारण गांधीजी से भी आगे एक कदम रखने की भावना भरी रहती थी। आधसेर के पात्र में कैसे सेर समाय? इसी समय जबकि विचारों में महान उथल-पुथल मची रहती थी तब कुछ शांति भी मिलती थी अनुभवी वयोवृद्ध पिताजी के वचनामृत से। पर, पिताजी के देहावसान से उस शांति का भी अन्त हो गया और छह माह बाद ही पत्नी का भी देहान्त हो गया जिसने शिवपुरी को एकदम नीरस बना दिया। यद्यपि यह भू-भाग अत्यन्त पिछड़ा हुआ है, यह धारणा पहले से ही थी फलतः शिवपुरी की जमी जमाई संस्था को समाप्त कर दिया, यद्यपि जमे काम को छोड़ना भयंकर भूल थी। संघर्ष का धैर्य से सामना किया होता तो भविष्य में इस विद्यालय से ऐसे होनहार बालकों को निकालने की संभावना थी जिस पर कि देश को गर्व हो सकता था। इस प्रकार क्रोध की अति ने एक भँवर में फँसा दिया जिससे छुटकारा पाने

में आगे के चौदह वर्ष लगे पर ये वर्ष थे बड़े अनुभव के जिसने परिपक्व बनाने में पूर्ण योग दिया। अतः यह सत्य ही है कि वर्षा, धूप नाना प्रहार आदि सहकर ही वृक्ष बलवान् होते हैं।

पिताजी का देहावसान तथा हिन्दू कॉलेज देहली में प्रवेश

सन १६२६ की आश्विन शुक्ल प्रतिपदा शनिवार को प्रातः लगभग ७ बजे वह वेला आई जिसने आदरणीय पिताजी के लालन-पालन में पले पुत्रों व पुत्री को पितृहीन बना उनके सदुपदेशों से वंचित कर दिया। सम्भव है, पिताजी के आश्रय में सदैव रहने से बालकों के पूर्ण विकास में बाधा आती हो अतः उसे दूर करने को ही उस पवित्रात्मा ने अपना आश्रय उठाया हो। जो उनके शरीर छोड़ने की घटना है चिरस्मरणीय और अनुकरणीय। प्रातःकाल की पुण्य वेला थी। शीतल, मंद सुगन्ध हवा चल रही थी। जिस कमरे में वे थे वह ऊदबत्तियों की सुगंध से सुवासित हो रहा था। दीवालों पर राष्ट्रीय एवं धार्मिक महापुरुषों व अवतारों के चित्र थे। गृह का बाह्य वायुमंडल भी शान्त बना दिया गया था। वेदना भीतर ही अपना कार्य कर रही थी, बाहर व्यक्त होने का साहस न था। पृथ्वी माता पर उनका शरीर उतार दिया गया। श्रीनिवासजी व सबसे छोटे भ्राता भगवानलालजी विद्यालय की प्रार्थना मधुर ध्वनि से गाकर कहने लगे। बीच-बीच में उन्हें तुलसीदल तथा गंगाजल का आचमन कराया जा रहा था। अन्त में जैसे भगवान् की आरती कहकर सियावर रामचन्द्र की जय बोली कि उसी के साथ उनने भी अंतिम श्वास हिचकी के रूप में ले पूर्ण की।

मैंने परिवार के सब व्यक्तियों को स्पष्ट कह दिया था कि उनके लिये विलाप करने की आवश्यकता नहीं। उनका सम्पूर्ण जीवन सत्वगुणी रहा है अतः अन्तिम समय में उन्हें परिवार के लोगों को दुःखी देखकर दुःख न हो ऐसा विधान बनाना हमारा कर्त्तव्य है। प्रभु कृपा से सब कार्य ठीक-ठीक पूर्ण हुआ, यद्यपि पीछे से मुझे कठोर हृदय व्यक्ति की

उपाधि अवश्य दी गई।

पिताजी के देहावसान के एक दो माह बाद ही जिस विद्यालय को उन्होंने जन्म दिया था उसको अधिक चलाने की क्षमता हममें न थी। अतः उनके साथ ही विद्यालय की लीला लगभग समाप्त सी हो गई, पर अन्तःकरण में उसकी जड़ दृढ़ थी जो १४ वर्ष बाद पुनः हरी होकर नवीन आवरण पहिनकर स्फुरित होने को थी। ब्रह्मचर्य-विद्यालय के कार्य भार से मुक्त हो अब मेरी आगे अध्ययन की धुन बलवती हुई। आदर्श-विद्यालय से प्रेरणा तो पहिले ही से मिल रही थी। अस्तु, हिन्दू कालेज देहली में जहाँ आदर्श विद्यालय द्वारा भेजे गये दो अन्य छात्र अध्ययन कर रहे थे, उन्हीं में सम्मिलित हो गये। निवास के लिये कालिन्दी के तट पर लाला लक्ष्मणदासजी का भवन था। इस प्रकार मैं अब पुनः प्रथम वर्ष का छात्र हो गया और विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान पाने का अपना लक्ष्य बनाकर मैं तदनुकूल वायुमंडल निर्माण करने में जुट गया।

कालेज में पहुँचते ही एक नवीन जीवन का संचार हुआ पर साथ ही यह धारणा, कि उच्च शिक्षा पाने वाले छात्रों को अधिक संयमी व अनुशासनप्रिय होना चाहिये निराधार सिद्ध हुई। छात्रावास में रहने वाले कोई-कोई छात्र हुक्का तक पीते थे। बीड़ी, सिगरेट तो साधारण सी बात थी। उच्छ्रंखलता उग्र रूप धारण किये हुए थी। अतः अपनी परीक्षा की तैयारी के साथ छात्र हितकारी सभा की आवश्यकता अधिक प्रतीत हुई और इस कार्य के लिये एक योग्य छात्र श्री हरभजनलाल से परिचय हुआ। छात्र हितकारी सभा का जन्म हुआ और उसका साप्ताहिक कार्य आरम्भ हुआ।

ब्रिटिश गवर्नमेन्ट कितनी जागरूक है इसका भी यहीं अनुभव हुआ। छात्रों में से कुछ छात्र सी.आई.डी. भी थे जो पुलिस को प्रत्येक घटना का विवरण देते थे। राष्ट्रविरोधी, राजनीतिक वायुमंडल के मार्ग में ये गुप्तचर तो बाधक थे ही पर समाजकल्याण के कार्यों को भी राजनीति

से रंगा जाता था।

इस पर भी छात्रहितकारी सभा तथा प्रथम वर्ष का अध्ययन तेजी से प्रगति करने लगा। पर मनुष्य का सोचा हुआ उसी समय ही हो जावे ऐसा नहीं होता, मानव प्रस्ताव रखता है किन्तु ईश्वर उसे रद्द कर देता है। कहावत (Man proposes and God disposes) ही सही उतरी। प्रभु को देहली का जीवन मान्य नहीं था अतः विघ्न उपस्थित हुआ और देहली छोड़ना पड़ी।

घटना-चक्र इस प्रकार है कि सन् १९२९ में पूज्य पौराणिकजी द्वारा पुरानी पोहरी को नये रूप में परिणत करने के लिये कृष्णगंज बसाने का श्रीगणेश हुआ। इस कार्य के लिये कोलारस के श्री वैदेहीचरण पाराशर जो आदर्श विद्यालय के छात्र थे, योग्य ठहराये गये। उन्होंने प्रायः निर्जन स्थान पोहरी के बाहर जो शिवपुरी-श्योपुर व पोहरी-मोहना का चौराहा था, वहाँ कुटिया बनाई। अल्प पूँजी से एक छोटी सी दुकान कल्याण-कुटी कृष्णगंज नाम से आरम्भ की। उसी काल में पूज्य पंडितजी द्वारा एक सार्वजनिक सभा में स्पर्शास्पर्श से हानि का उल्लेख किया गया और स्पष्ट शब्दों में भंगी, चमार आदि के हाथ से भोजन ग्रहण करने में कोई आपत्ति नहीं इतना तक कह दिया गया। उस सभा में कोलारस के एक पंडितजी भी थे। उन्होंने श्री वैदेहीचरण पाराशरजी के पूज्य पिताजी व माताजी से कहाकि तुम्हारा बालक तो भंगी, चमारों के साथ भोजन करता है। बस इतना सुनते ही पाराशरजी के माता-पिता पोहरी पहुँचे और पुत्र को कोलारस वापिस ले जाने के लिये आग्रह किया। किन्तु पाराशरजी उस समय जोशीले नवयुवक थे। भला अपनी प्रतिज्ञा कैसे तोड़ते? यद्यपि उस समय तक उन्होंने किसी अछूत के हाथ का भोजन नहीं किया था, पर उन्होंने पूज्य पौराणिकजी के वचनों का समर्थन किया। इस पर माता-पिता ने आमरण अनशन कर दिया और माता-पिता की दृढ़ प्रतिज्ञा के सामने बालक पाराशर को अपनी प्रतिज्ञा तोड़नी पड़ी

और वे पोहरी से कोलारस वापिस चले आये। अब कृष्णगंज बसाने की योजना योग्य व्यक्ति के अभाव में समाप्ति पर थी। पूज्य पौराणिकजी भी अपनी बात के धनी थे और साथ ही विघ्न दूर कर अपना काम चलाने की क्षमता रखते थे। कुछ चुने हुए छात्र और व्यक्ति उनके त्यागमय राष्ट्रीय जीवन से बहुत प्रभावित थे और उन पर श्रद्धा रखते थे। उन श्रद्धालुओं में मैं भी एक था जो उस समय देहली में उन्हीं की प्रेरणा से आदर्श-विद्यालय के अन्य तीन पुराने छात्रों के साथ अध्ययन कर रहा था। श्री पूज्य पौराणिकजी की मनोवैज्ञानिक दृष्टि ने मुझको ही श्री वैदेहीचरण पाराशर के रिक्त स्थान की पूर्ति करने को उपयुक्त समझा और एक अत्यन्त मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी पत्र मुझको लिखा। पत्र मिलते ही हृदय में उथल-पुथल मचने लगी। अनेक विचार उत्पन्न होने लगे। कभी-कभी तो पूज्य पौराणिक जी पर मानसिक आक्षेप होने लगा कि इनके तीन विद्यार्थी जो देहली में बी.ए, बी.एस.सी. आदि परीक्षाओं में पढ़ते रहे हैं और उनका समस्त आर्थिक भार वे ही उठा रहे हैं और पोहरी के निकट के ही वे रहने वाले हैं फिर उन्होंने उन्हें क्यों नहीं बुलाया जबकि पारिवारिक अनेक उलझनों को सहते हुए मेरे कॉलेज जीवन का अभी श्रीगणेश ही हुआ है। भविष्य का कार्यक्रम भी मैं निश्चित कर चुका था। इस प्रकार कभी अनुकूल कभी प्रतिकूल विचारधारा में बहते-बहते यही श्रेयस्कर दिखा कि निजी स्वार्थ से राष्ट्रहित महान कार्य है। बस, इस निश्चय पर आते ही संध्या को साथी मित्रों से कह दिया कि मेरे कॉलेज जीवन की पूर्णाहुति होगई और अब कृष्णगंज को प्रस्थान है। इसी रात्रि को देहली से रवाना होकर दूसरे दिन सम्भवतया प्रबोधनी एकादशी को कृष्णगंज में पूज्य पौराणिकजी तथा उनकी पूज्य माताजी के सम्मुख उपस्थित हो गया और वे ही इस नवीन बस्ती के एक मात्र नागरिक थे। पौराणिक जी जिन्हें पूज्य पंडितजी कहते थे अत्यन्त प्रसन्न हुए पर उनकी माताजी ने उनको व्यंगात्मक उलाहना

दिया कि "तुम क्यों दूसरों के घर वालों से लड़कों का वियोग कराते हो। अभी वैदेहीचरण पाराशर जी के माँ-बाप मूड़ फोड़कर गये हैं अब इनके घर वाले आवेंगे।" किन्तु साथ ही पूज्य माताजी ने मुझे हृदय से आशीर्वाद दिया। इस प्रकार कृष्णगंज में एक नवीन जीवन का श्रीगणेश हुआ।

कल्याण कुटी कृष्णगंज, पोहरी का जीवन

पूज्य पंडित जी तो कृष्णगंज में बहुत थोड़े ही रहते थे। प्रायः चन्दे आदि के सिलसिले में उन्हें बाहर जाना पड़ता था। पूजनीय पंडितजी की माताजी जिन्हें 'बाई' कहते थे वह अपने निजी मकान पोहरी किले के भीतर रहती थी। उनका आना जाना बना रहता था। उनका हृदय विशाल था। खिलाने पिलाने का बड़ा चाव था। उनका स्नेह सगी माता से कम न था। कृष्णगंज की दुकान मनिहारी व परचूनी सामान की थी। ग्राहक थे यदाकदा सड़क से गुजरने वाले पथिक या गाड़ीवान। अतः समय व्यतीत करना दूभर हो जाता था। सोचते-सोचते यह तय किया कि जो बिक्री से आय हो उस पर ही निर्वाह करना चाहिये। स्वावलम्बी जीवन का प्रयोग करना चाहिये। लकड़ी व विनैले गोबर के कंडे खेतों में जो पड़े रहते थे उन्हें एकत्रित करना एक नित्य का काम हो गया। एक दो पैसे का ईधन गाड़ीवान ले लेते थे और एक दो पैसे बिक्री से प्रारम्भ में प्राप्त हो जाते थे। उसी आय से संतोष से जीवन बीतने लगा। उस समय में ३-४ पैसे में गरीब आदमी की भाँति अपना जैसे तैसे निर्वाह कर लेता था। कुछ दिन बाद कृष्णगंज में दिन भर रहना और रात्रि को ४ मील दूर आदर्श विद्यालय भटनावर पहुँच जाना और वहाँ विद्यालय की स्थिति को सम्हालते रहना कार्य हो गया। यह क्रम ५-६ माह चलता रहा।

पूज्य पंडितजी को उस समय रचनात्मक कार्यो की बड़ी लगन थी। इसी उद्देश्य से उनके द्वारा श्री रतीरामजी, महात्मा गांधी के सत्याग्रह आश्रम अहमदाबाद में खादी की ट्रेनिंग को भेजे गये। वे ट्रेन्ड

होकर जब लौटे तो उन्हें भटनावर विद्यालय पर ही स्वावलम्बी दृष्टि रखते हुए खादी का विस्तार करने को कहा गया। सम्भवतया पूज्य पंडितजी को यह अनुभव न होगा कि ट्रेनिंग लेने में और व्यवस्था करने में जमीन आसमान का अन्तर है। एक १७-१८ वर्ष का ग्राम का बालक स्वावलम्बी रहकर व्यवस्था कैसे कर सकता था? हाँ, कोई एक दो विरले ही संस्कारी कुशाग्र बुद्धि बालक भले ही इसके अपवाद हों। अस्तु, श्री रतीरामजी स्वयं खादी उत्पादन की व्यवस्था न कर सके। यद्यपि वे उत्पादन कला के अच्छे जानकार अवश्य हो गये थे और सत्याग्रह आश्रम से भी कताई बुनाई में सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुए थे। किन्तु वे शिक्षक रहकर खादी कला केवल पढ़ा सकते थे। बिना किसी दूसरी आर्थिक सहायता आदि के उत्पत्ति केन्द्र चलाने में असमर्थ थे। लाचार होकर पूज्य पंडितजी ने मुझे जो खादी कला से नितान्त अनभिज्ञ था, कृष्णगंज पर ही खादी उत्पत्ति केन्द्र चलाने की व्यवस्था करने का आग्रह किया। प्रभु को यश देना था। अल्पकाल ही में खादी उत्पत्ति केन्द्र, पोहरी प्रसिद्ध हो गया और ग्वालियर मेले की प्रदर्शनी में भी भाग लेकर पुरस्कार प्राप्त करने लगा। हाँ, इस कार्य के पीछे थी एक सच्ची लगन, अथक परिश्रम और राष्ट्रीय भावना। मेरा दृश्य देखने योग्य था जबकि मैं पागल की भाँति धुन में लगा हुआ एक कोली के घर बैठ जाता था और उसे प्रेरणा दिया करता कि वह ८ गिरह के अर्ज की जगह १२ गिरह की खादी बुने। कोली रोटी खाता रहता था, घर का अन्य काम करने में लगा रहता और मैं बैठे-बैठे उसकी स्वीकृति की प्रतीक्षा करता रहता था। इसी प्रकार निम्न स्तर के लोगों के घर-घर फिर-फिर कर किसी से पावभर, किसी से आधा सेर सूत कतवा कर लिया करता था। सच्ची लगन का परिणाम यह निकला कि इसी वर्ष आदर्श विद्यालय भटनावर के छात्र मिडिल परीक्षा देने शिवपुरी गये तो वे पोहरी की खादी के वस्त्र पहिनकर ही गये। हाँ, उस समय तक खादी कोरी गजी ही थी आज जैसी धुली हुई नहीं। अब श्री

रतीरामजी भी भटनावर से पोहरी भेज दिये गये और उनके सहयोग से सुन्दर 'कल्याण कुटी खादी उत्पत्ति केन्द्र' चलने लगा। यह उत्पत्ति केन्द्र शिवपुरी मंडल का सर्वप्रथम केन्द्र था। अब कृष्णगंज की पुरानी मनिहारी व परचूनी की दुकान खादी भण्डार में परिवर्तित हो गई तथा दो बुनकरों द्वारा स्थानीय खादी बुनने का एक छोटा सा कारखाना बन गया। इधर शिक्षा की दृष्टि से मैंने प्रायवेटली इंटरमीडिएट परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली।

स्पर्शास्पर्श का भयंकर तूफ़ानी आन्दोलन और कठिन परीक्षा

श्रीमंत सरदार मालोजीराव, नरसिंहराव शीतोले पोहरी जागीर के स्वामी थे। आप उदार हृदय व्यक्ति हैं। आपका स्वाभिमान श्लाघनीय है। आपकी रुचि सदैव रचनात्मक कार्यो की प्रगति देखने की रही है आपका स्नेह पूज्य पंडितजी पर अपार था। आपने पुत्रवत् या शिष्यवत् इन पर स्नेह किया था। पूज्य पंडितजी महात्मा गांधी के अनुयायी समझे जाते थे और उनके कार्य भी उस समय वास्तव में ऐसे ही थे। अतः जब तक माध ावराव सिंधिया ग्वालियर नरेश जीवित रहे पूज्य पंडितजी द्वारा संचालित आदर्श विद्यालय, भटनावर पर शासकीय कुदृष्टि रही। किन्तु, उनके देहावसान पर रीजेन्सी स्थापित हुई तब श्रीमंत सरदार साहब द्वारा आदर्श विद्यालय को आर्थिक सहायता दी जाने लगी। ज्यों-ज्यों उसकी प्रगति हुई श्रीमंत सरदार साहब ने भी मुक्त-हस्त से योग दिया। यहाँ तक कि समस्त पोहरी जागीर के शिक्षण का प्रबन्ध पूज्य पंडितजी को दे दिया गया। कर्मवीर पूज्य पंडितजी ने बड़ी सच्चाई व लगन से जागीर में शिक्षा का प्रसार का कार्य किया। साथ ही रचनात्मक दृष्टि से रंगाई छपाई सहित खादी उत्पत्ति, हस्त-कागज निर्माण, हस्त निर्मित दियासलाई आदि के लिये ग्राम कला मंदिर की स्थापना मेरी देखरेख में की। तुलसीदासजी के कथनानुसार "सज्जन सुकृत सिंधु सम कोई । देखि पूरि बिधु बाढ़इ जोई।।"

श्रीमंत सरदार साहब की सर्वत्र प्रशंसा और आदर्श-विद्यालय जो

बढ़कर अब 'आदर्श सेवा संघ' हो गया था, उसके द्वारा किये जाने वाले रचनात्मक कार्य अधिकारियों को खटकने लगे। श्रीमंत सरदार साहब पर क़ोर्ट कायम करने के हेतु रूपक रचे जाने लगे। ऐसे भीषण समय में ही दैवयोग से पूज्य पंडितजी की वर्ष-ग्रन्थि समारोहपूर्वक मनाई गई। आदर्श-विद्यालय, पोहरी के छात्र व अध्यापकों ने पोहरी के सुप्रसिद्ध दर्शनीय तीर्थ केदारेश्वर पर सहभोज की योजना रखी। इस भोज में भटनावर-विद्यालय के छात्र भी आमंत्रित किये गये। भटनावर-विद्यालय अब शासकीय विद्यालय था। यह पोहरी जागीर शिक्षा विभाग का एक मिडिल स्कूल था। विद्यालय पूज्य पंडितजी की देखरेख में चलता था। भटनावर के छात्रों में एक मिडिल कक्षा का छात्र वंशीधर चर्मकार भी था। भोजन बनाने वाले व परसने वाले सवर्ण थे। सवर्ण और हरिजन छात्रों ने अलग-अलग बैठकर केवल भोजन किया था। एक अध्यापक ने उस चर्मकार के बालक को एक मुसलमान से नीचे बैठे हुए देखकर उसे ऊपर को बैठा दिया। बालकों में यह धारणा तो पहिले से ही घर किये हुये थी कि आदर्श-विद्यालय छुआछूत मिटाता है, अतः भटनावर के कुछ ब्राह्मण बालक चुपचाप वहां से खिसक गये और भटनावर में पहुँचकर कह दिया कि "हमको आदर्श-विद्यालय वाले, चमारों के हाथ का बना और चमारों के साथ बैठाकर भोजन कराते हैं इसलिये हम भाग आये।" यद्यपि वहाँ एक दो मुसलमान छात्र भी थे पर उन पर जनता का आक्षेप नहीं था। घृणा तो थी हरिजनों से। शनैः-शनैः आदर्श-विद्यालय की यह घटना सर्वत्र जागीर में फैल गई। आश्चर्य तो यह था कि एक मुसलमान हिन्दुओं को उभारने का प्रचार करता था कि आदर्श-विद्यालय हिन्दुओं का धर्म भ्रष्ट कर रहा है। अतः ग्राम-ग्राम में पंचायतें हुई और आदर्श-विद्यालय द्वारा संचालित पोहरी जागीर के शिक्षा विभाग के सभी स्कूल बंद हो गये। पंचायत की यह कठोर घोषणा थी कि जिसका बालक सरकारी स्कूल में जावेगा या जो सरकारी शिक्षा विभाग में अध्यापक रहेगा उसे जाति से

बहिष्कृत कर दिया जावेगा। भटनावर में जनता की ओर से एक धर्मस्कूल भी खुल गया। उस समय पोहरी जागीर में चार शिक्षा विभाग के मिडिल स्कूल व लगभग २०-२५ प्राईमरी पाठशालाएँ थीं। श्रीमंत सरदार साहब का कहना था कि चाहे एक ही चर्मकार का लड़का स्कूल में आवे उसे पढ़ाना चाहिये और स्कूल बन्द न किये जावें। जाति बहिष्कार के भयंकर डर से स्कूल बन्द होने लगे। केवल एक मिडिल स्कूल ककरौआ में अभी चल रहा था और उसके प्रधानाध्यापक थे मेरे छोटे भाई श्री देवीलालजी उन्होंने अपनी जान की बाजी लगा दी थी। उनका बालकों पर महान् स्नेह था। जनता और बालक दोनों ही प्रेम करते थे। इतना होने पर भी जाति बहिष्कार ने अपना असर डाला अवश्य पर श्री देवीलालजी ने निर्भय होकर रात दिन लोगों को समझाया और अंत में आमरण अनशन ले लिया। इससे लोगों के दिल हिल गये और वे जाति बहिष्कार की परवाह न कर छात्रों को भेजते रहे। पू. पंडितजी की इच्छा थी कि इस घटना का सूत्रपात भटनावर से हुआ है अतः भटनावर स्कूल बन्द नहीं होना चाहिये। कैसे भी हो उसे चलना चाहिये और जिस वंशीधर चर्मकार के लड़के को लेकर बात खड़ी हो गई है उसे पढ़ाना चाहिये। पर जनता का घोर विरोध था। और इस विरोध का गढ़ था भटनावर। अतः यहाँ सभी प्रयत्न विफल हो गये। आदर्श सेवा संघ के जीवन सदस्य केवल छह थे- श्री रामगोपाल, श्री हरीशंकर, श्री रतनलाल दीक्षित, श्री वैदेहीचरण पाराशर, श्री रतीराम और मैं। ऐसी स्थिति में पूज्य पंडितजी ने आदर्श सेवा संघ के सभी सदस्यों को आमंत्रित किया और रात्रि के १ बजे गंभीर स्वर में कहा कि "अब आदर्श सेवा संघ के जीवन सदस्य श्री नारायणदासजी जो इस समय खादी उत्पत्ति केन्द्र की व्यवस्था सुचारु रूप से कर रहे हैं, भटनावर जावेंगे और मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे बिना भटनावर स्कूल को जमाये वापिस नहीं लौटेंगें।" मैं स्वभाव से ही भावुक तो हूँ ही इस प्रकार अपने ऊपर आये भार को, जो ऐसी भीषण परिस्थितियों में दिया गया

था उठाने से कैसे इंकार कर सकता था? सभा समाप्त हुई और मैं भी उसी समय केवल धोती व तौलिया लेकर वैसे ही भटनावर चल दिया और लगभग ३ बजे रात्रि को भटनावर पहुँच गया। सबसे पहले बोहरे किशोरीलालजी पालीवाल से मिला जो वहाँ के एक गणयमान्य प्रतिष्ठित व्यक्ति थे और साथ ही पूज्य पंडितजी के परम भक्त थे। उन्होंने स्पष्ट कहा कि "और किसी की तो बात ही क्या यदि पूज्य पंडितजी स्वयं ही यहाँ बैठकर विद्यालय चलावें तो भी विद्यालय नहीं चल सकता।" तब प्रभु को स्मरण कर मैंने भटनावर विद्यालय की इमारत में प्रवेश किया। यह इमारत बड़ी सुन्दर और विशालकाय है। प्राचीनकाल में खांडेराव का महल था पर आजकल खांडेराव की हवेली कहते हैं।

इस हवेली की तीसरी मंजिल में गुम्बज है, वहीं ठहर गया। हवेली की प्रवेश की पौर में घास, गोबर व गींजन का ढेर लगा था। कई दिन से हवेली की दालानें व कमरे जहाँ छात्र बैठते थे झड़ी तक नहीं थीं। ३ या ४ अध्यापक जो पोहरी जागीर से बाहर के थे चारपाइयों पर उदास बैठे थे। कोई मार्ग उनके सामने न था। पर सरकारी आदेश था, अतः वे स्कूल में थे। उनकी उपस्थिति मात्र से वेतन मिल रहा था। मैंने सर्वप्रथम उन सब अकर्मण्य शिक्षकों को पूज्य पंडितजी के पास पोहरी पहुँचा दिया। तब यह विचार किया कि यह हवेली नहीं वरन् सरस्वती मंदिर है। जब तक यह स्वच्छ व शुद्ध नहीं होगा तब तक छात्रों को विद्याभ्यास कराया भी कैसे जा सकता है?" अब अदम्य उत्साह से प्रातः से संध्या तक हवेली को स्वच्छ बनाने का कार्यक्रम निश्चय किया और तुरन्त ही डलियों से भर-भर कर मैं पौर का मनों कूड़ा बाहर घूरों पर फेंकने लगा। और समस्त हवेली को झाड़बुहार कर स्वच्छ रखने लगा। यद्यपि शरीर बुरी तरह थक जाता था, पर था अपार उत्साह और थी सच्ची उमंग। सर्वप्रथम मैंने चर्मकार छात्र वंशीधर को जिसको लेकर आन्दोलन खड़ा हुआ था बुलाया और उसे ही नित्य पढ़ाना आरम्भ कर

दिया। हाँ, शिक्षण का काम मैं हवेली के बाहर खुले चौक में करता था। हवेली से आगे एक मीठा कुँआ है जहाँ नित्य स्त्रियाँ पानी भरने तथा लोग हाथ मुँह धोने आदि को जाते थे। जब उन्होंने मुझे वहाँ जमे हुए देखा और वंशीधर को पढ़ते देखा तो डराने के लिये नाना प्रकार के व्यंग उनके द्वारा कसे जाने लगे। कुछ लोगों ने तो यह भी धमकी दी कि "क्यों अपनी लाश अस्पताल में पहुँचा रहे हो। अपने घर जाओ इसी में कुशल है।" जबकि दूसरे लोगों ने कहा कि 'मेहतर का काम झाड़ने का करके क्या लड़के पढ़ने आजावेंगे? पर मैं तो अपनी धुन में लगा था मुझे इन टिप्पणियों से क्या सरोकार था? शनैः-शनैः वंशीधर के साथ बोहरे जी का एक रिश्तेदार भी आने लगा। जब ये दो छात्र खुले आँगन में जनता के तीव्र विरोध के बीच बैंच पर बैठे पढ़ रहे थे तब उज्जैन के सार्वजनिक सभा के प्रमुख सदस्य श्री पुस्तकेजी तथा हरिजन सेवा संघ के मंत्री श्री दाते साहब अपने उस क्षेत्र के दौरे के सिलसिले में वहाँ पहुँचे और उन्होंने यह दृश्य देखा तो दंग रह गये। उनके मुख से यही निकला कि "इतना सामूहिक जनता का सुगठित तीव्र विरोध नहीं देखा और इस विरोध का डटकर सामना करने वाले नारायणदासजी जैसे व्यक्ति इस समय तक हमारी दृष्टि में नहीं आये।" उन्होंने बड़े प्रेमपूर्वक मेरी सराहना की और स्पष्ट कहा "ऐसी सच्ची धुन का कार्य परमात्मा अवश्य पूर्ण करेगा।" और हुआ भी वैसा ही प्रभु कृपा से दूसरे दिन जब मैं आँगन के बाहर घास छील रहा था कि पास के ग्राम के दो बालकों ने जो नवीन खुले धर्म स्कूल में पढ़ने जा रहे थे, देखा कि हवेली खुली है और एक मास्टर भी है। उन्होंने उत्सुकता से पूछा 'क्या स्कूल खुल गया? तो मैंने उत्तर दिया कि "स्कूल खुल गया है, तुम पढ़ने आ सकते हो।" बालक झिझके पर हिम्मत करके पढ़ने आ बैठे। बस दोनों ग्रामीण बालकों को प्रेम से ७-८ दिन की पढ़ाई एक ही दिन में मैंने पढ़ा दी और घर जाने से पूर्व उनके कपड़े भी साबुन से धोकर साफ सुथरे कर दिये। उन

लड़कों ने घर जाते ही सब बातें कहीं। नवीन खुले धर्म स्कूल की उच्छृंखलता से लोग व्याकुल भी थे। इस सुन्दर व्यवस्था से कुछ पालकों ने दूसरे दिन उन छात्रों के साथ अपने-अपने बालकों को भी और भेज दिया। जहाँ लड़कों का हवेली में आना आरम्भ हुआ कि पंचायत ने जोर पकड़ा और सभी तरह के कुचक्र चले। पर, जनता सत्य बात समझती थी। उसे स्पष्ट विदित हो गया कि उनके बच्चों का कहाँ हित है। कुछ लोगों ने हिम्मत करके जाति बहिष्कृत होना भी स्वीकार कर लिया। ध ीरे-धीरे सच्चाई के सामने असत्य ने सिर झुकाया और लगभग दो माह के भीतर पढ़ने आने वाले छात्रों की संख्या लगभग ६० हो गई। स्कूल विधिवत् जब चलने लगा तो पूज्य पंडितजी व श्रीमंत सरदार साहब को अत्यन्त हर्ष हुआ और उन्हें आदर्श सेवा संघ के कर्मठ सदस्यों पर गर्व होने लगा। अब मैं अपने पूर्व कार्य पर पुनः वापिस आ गया यद्यपि इस आन्दोलन के फलस्वरूप ग्वालियर की रीजेन्सी सरकार ने शिक्षा विभाग आदर्श सेवा संघ से वापिस लेने के लिये श्री सरदार साहब को विवश कर दिया। किन्तु, जब शिक्षा विभाग वापिस किया गया उस समय उसकी दशा पूर्णतया संतोषजनक होगई थी।

पुनर्विवाह के प्रकरण से छुटकारा

पत्नी के देहावसान के उपरान्त तरुण विधुर के पुनर्विवाह का प्रायः वयोवृद्ध बहुत हठ करते हैं। इस परिस्थिति का सामना मुझे करना पड़ा। विशेषकर मेरी माताजी पुनः विवाह करने के लिये बहुत ही बल देती थीं। मैं सदैव टालता रहता था। यद्यपि समाज व राष्ट्रहित की दृष्टि से पुनर्विवाह की प्रथा हानिकारक है और विशेषकर जबकि स्त्री जाति को यह अधिकार नहीं है तो पुरुष का भी पुनर्विवाह नहीं होना चाहिये आदि भावनाऐं मुझमें उठा करती थीं जिससे पुनर्विवाह की बात पर मैं विशेष ध्यान नहीं दिया करता था। किन्तु तरुण मानव का विषय वासना पर अधिकार करना महान् कठिन है। ऊपर से तो मैं भी भले ही कड़ा बना

रहा किन्तु, मेरा अन्तःकरण अशुद्ध हुए बिना नहीं रहा। जब विचार पकने लगे और वास्तविकता समझ में आई तब पुनर्विवाह की हानियों का विवेक उत्पन्न हुआ। विवेकपूर्ण विचारों से मैं मानसिक रूप से भी स्वस्थ रहने लगा। विवेक आने पर भी एक दिन माताजी का पक्ष लेकर श्री नत्थीलालजी ने विवाह के लिये बहुत आग्रह किया और समाज सुधार का रूप देते हुए पूज्य पंडितजी की ओर से भी विधवा विवाह के लिये प्रेरणा दिलाई गई। पर मैंने अब विवाह के वास्तविक रूप को समझ लिया था। फलतः मैंने स्पष्ट शब्दों में श्री नत्थीलालजी से कह दिया कि रामायण में जब अनुसूयाजी ने सीताजी को उपदेश दिया तो इस बात का संकेत किया है कि जो स्त्री पर-पुरुष की ओर दृष्टि डालती है वह तरुणाई में विधवा हो जाती है। "पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। विधवा होइ पाइ तरुनाई।।" इस प्रकार जो पुरुष पराई स्त्री को कुदृष्टि से देखता है तो उसे भी तरुणाई में विधुर होना चाहिये। अतः यदि मैं तरुणाई में विधुर हुआ हूँ तो निश्चय ही अपराधी हूँ और उसका प्रायश्चित्त मुझे अवश्य करना चाहिये। अतः अब पुनः विवाह न करना और संयम से रहना ही पूर्व में किये हुए कर्म का प्रायश्चित्त है। इस उत्तर के बाद फिर विवाह सम्बंधी प्रकरण सदा के लिये समाप्त हो गया।

आदर्श सेवा संघ का कार्य करते हुए प्रथम धक्का

यद्यपि शिक्षा विभाग की व्यवस्था सरदार साहब को वापिस कर दी गई थी और बाहरी दबाव भी श्री सरदार साहब पर भरसक पड़ चुके थे पर श्री सरदार साहब व पूज्य पं. जी का परस्पर स्नेह बना रहा। उनकी आर्थिक सहायता से रचनात्मक कार्यो में वृद्धि होती ही रही। अब कृष्णगंज में आदर्श सेवा संघ से संबंधित विद्यालय, छात्रावास, ग्रामकला मंदिर आदि कई संस्थाओं की व्यवस्था हो गई थी। गरीबी के दिन समाप्त हुए और पैसा आने लगा। पैसे के साथ विकार आना भी स्वाभाविक है। इसी प्रकार राजाओं का आश्रय उनकी आवश्यकता से अधिक आवभगत

को जन्म दे देता है। यही स्थिति आदर्श सेवा संघ की हुई। मैं स्वभाव से ही राजाओं को झुककर प्रणाम करने का आदी नहीं था। जब सब साथियों के साथ सरदार साहब से मिलना हो और सब लोग झुककर प्रणाम करें तो मुझे भी करना पड़े जो हृदय में चोट पहुँचाता था। इधर जब पूज्य पंडितजी से संबंध स्थापित हुआ था तब उनका जीवन महान् तपस्वी का था। उनकी घुटने तक की धोती मोटी खादी की होती थी तथा कुरता भी मोटी खादी का होता था तथा पैर में चप्पल रहती थी। वे अथक श्रम करते थे। बड़ी मुश्किल से एक-एक पैसा एकत्रित करते थे तब वे संस्था को चला पाते थे। उनका यह तपस्वी जीवन ही मुझे उनकी ओर खींच लाया था। पर श्रीमंत सरदार साहब से घनिष्ठ संबंध होने पर पूज्य पंडितजी का भी जीवन राजसी होने लगा। एक दिन जब मैं व पूज्य पंडितजी तथा अन्य एक दो मित्र केदारेश्वर से लौट रहे थे तब रास्ते में मैंने कहा कि "अब तो आदर्श सेवा संघ शनैः-शनैः रजोगुणी होने लगा है। पूर्व जैसा सादगीपूर्ण रहन-सहन का जीवन समाप्त सा हो गया है।" इस पर पूज्य पंडितजी ने उत्तर दिया कि "पहले भी मेरे विचार तो राजसी थे पर पैसे की लाचारी से सादगी का जीवन बिताना पड़ता था।" कुछ इसी भाव के अन्य विचार भी प्रकट किये। इन विचारों से मुझको महान् धक्का लगा कि मैंने आदर्श सेवा संघ के रूप को समझने में भूल की है पर अब क्या हो सकता था। किन्तु, तब से ही संघ से पृथक् होने की भावना पनपने लगी।

श्री रामगोपालजी का विवाह और दूसरा धक्का

आदर्श सेवा संघ के एक सदस्य व पूज्य पंडितजी के अत्यन्त स्नेह से पले श्री रामगोपालजी गुप्त थे। इनके गुणों पर ही मुग्ध होकर पूज्य पंडितजी को बड़ी-बड़ी आशायें थीं। आदर्श सेवा संघ ने ही उनको बी.एस.सी. तक शिक्षा दिलाई और वे ही आदर्श सेवा संघ के सच्चे उत्तराधिकारी पूज्य पंडितजी की दृष्टि में प्रतीत होते थे। वे हैं भी

सत्वगुणी तथा सरल प्रकृति के व्यक्ति, इसमें सन्देह नहीं। पर वे अन्तःकरण के मनोभावों को प्रायः दबाकर पूज्य पंडितजी के आदेशानुसार ही कार्य करते थे और उनके आदेशानुसार कार्य करने में यथेष्ट सफलता न मिलने पर उन्हें उनकी भर्त्सना सहनी पड़ती थी। इसी के परिणामस्वरूप आगे चलकर उन्हें भी आदर्श सेवा संघ से त्यागपत्र देना पड़ा। श्री रामगोपालजी का विवाह श्री विश्वेश्वर नाथ गुप्ता जो उस समय फॉरेस्ट आफीसर, उज्जैन थे, की पुत्री से निश्चित हुआ था और यह निर्णय हुआ कि विवाह अनुकरणीय आदर्श होगा। प्रधान-प्रधान आदर्श बातें चार थीं- (१) श्री रामगोपालजी के मित्र जिनकी संख्या छह थी वे ही बारात में जावेंगे और सब अपना-अपना व्यय करके ही सम्मिलित होंगे। (२) रूढ़ियाँ सब तोड़ दी जावेंगी। (३) वधू को शुद्ध खादी पोहरी की बनी हुई पहिनाई जावेगी। (४) कोई आभूषण आदि नहीं चढ़ाये जावेंगे आदि। निश्चित समय पर जो मित्र जहाँ थे वे वहाँ से उज्जैन में वैवाहिक कार्य मैं भाग लेने आये। उस समय मैं बी.ए. की परीक्षा की तैयारी आगरा में कर रहा था वहाँ से ही उज्जैन को रवाना हुआ। उज्जैन पहुँचकर आदर्श का दर्शन नहीं हुआ। रूढ़ियाँ भी बरतीं गईं, आभूषण चढ़ाये गये तथा पोहरी की खादी का एक वस्त्र भी प्रयोग में नहीं आया। इसका मेरे मस्तिष्क पर बड़ा आघात पहुँचा और कई दिन बाद मेरा मस्तिष्क पुनः स्वाभाविक स्थिति में आया। इस आघात ने आदर्श सेवा संघ से मुझे एकदम विमुख कर दिया। पूज्य पंडितजी द्वारा अपनी भावुकता की मजबूरी प्रकट किये जाने पर सेवा संघ से मेरा विच्छेद तो उस समय रुक गया पर मानसिक खिन्नता बनी ही रही। परिणामस्वरूप उज्जैन से वापिस आगरा पहुँचकर बी.ए. की परीक्षा दी अवश्य, पर असफलता ही हाथ लगी।

आदर्श सेवा संघ से त्यागपत्र

सन १९४३ में मुझ पर आदर्श विद्यालय के प्रधानाध्यापक का भार था। मैट्रिक के छात्र बनारस परीक्षा देने जाया करते थे। छात्रों की परीक्षा की पूर्ण तैयारी कराने के उपरान्त यथा समय छात्रों को साथ लेकर मैं बनारस आया। छात्रों की परीक्षा पूर्ण हुई। अब आगे आदर्श सेवा संघ में रहकर कार्य करने को अन्तःकरण गवाही न देता था। पर, हिचक थी कि "जिस संस्था की सेवा १४ वर्ष की है उसे छोड़ना क्या उचित है? अभी तक लोगों से जिसकी स्तुति करते आये हैं अब उसके प्रति निन्दा की बात करना कहाँ तक उचित है?" इस प्रकार के विचारों की उलझन सुलझाने का एक-मात्र उपाय बड़ों का परामर्श लेना ही मैंने ठीक समझा। बनारस में तो था ही अतः पूज्य मालवीयजी महाराज से बढ़कर इस दिशा को समझाने वाला दूसरा व्यक्ति कठिनता से ही प्राप्त हो सकता था। अतः उनसे ही अपनी समस्या सुलझाने का निश्चय किया। अतः १५ अप्रैल १९४३ को संध्या के ५ बजे मैं उनके दर्शनार्थ उनकी कोठी पर गया पर वे रुग्ण थे उनसे लोगों का मिलना वर्जित था। अतः उनके बंगले में पड़े एक तखत पर बैठ गया और प्रभु स्मरण करने लगा। प्रभु प्रेरणा से उनके प्रायवेट सेक्रेटरी श्री मुकुन्द संध्या के ६ बजे आये और उन्होंने मेरे सम्बन्ध में मुझसे वार्तालाप करके श्री मालवीय जी महाराज से निवेदन कर दिया। पूज्य मालवीय जी महाराज ने कृपावन्त होकर मुझे बुला लिया और मेरे आने का कारण पूछा। मैंने पूज्य मालवीयजी से नम्रता से दो प्रश्न पूछे (१) यदि कोई व्यक्ति किसी संस्था की १४ वर्ष से प्रेम से सेवा कर रहा हो और फिर संस्था के प्रधान के कार्य ऐसे होने लगें जिनके करने में अशांति उत्पन्न हो और आत्मा साक्षी न दे तो ऐसी दशा में संस्था छोड़ देना उचित है अथवा नहीं? (२) इतने बड़े विश्वविद्यालय के निर्माण करने में आपने कौन से मूल सिद्धान्तों को अपनाया जिससे आपको सफलता मिली।

पूज्य मालवीय जी ने पहिले प्रश्न का उत्तर यही दिया कि आत्मा के कहे अनुसार चलना प्रथम और संस्था का स्थान दूसरा है। और दूसरे प्रश्न का उत्तर दिया कि निरन्तर जप करते हुए डटकर काम करने से विश्वविद्यालय बना है। प्रार्थना और उद्योग ही सफलता की कुंजी है।

पूज्य मालवीय जी से परामर्श कर मैं बनारस से लौटकर पोहरी वापिस आया और पूज्य पंडितजी के पास जो उस समय बम्बई में थे अपना त्यागपत्र भेज दिया और स्पष्ट लिख दिया कि "अब मेरी स्थिति ऐसी आगई है कि मैं सच्चाई से संघ का कार्य नहीं कर सकता। जैसे आप चाहते हैं वैसा करने की मेरी आत्मा गवाही नहीं देती और जैसा मैं करना चाहता हूँ वैसा आपको पसन्द नहीं। ऐसी दशा में संस्था से त्यागपत्र देना ही उचित समझता हूँ।

रुग्णावस्था और एक साधू की चेतावनी

पोहरी छोड़ने से पूर्व मानसिक खिन्नता तो थी ही, शरीर भी रुग्ण रहने लगा था और शनैः-शनैः तीव्र ज्वर का प्रकोप हुआ जिसका प्रभाव लगभग एक सप्ताह रहा। अब ज्वर तो चला गया था केवल अशक्तता अधिक थी। पथ्य लेना आरम्भ हो गया था। एक दिन लगभग १०-१०½ बजे दिन में जब पथ्य ले रहा था कि एक साधु ने दर्शन दिया। इनका कद ठिगना था, भगवा वस्त्र धारण किये थे और गले में मोटी-मोटी रुद्राक्ष की माला पहिने थे। उन्होंने कहा कि "भैया अब आदर्श सेवा संघ का कार्य भार समाप्त हुआ। अब तुमसे भगवान् को दूसरा कार्य कराना है उसे करो।" बस इतना कहकर वे चल दिये। मेरे पास डॉक्टर कान्हरे साहब जो उस समय पोहरी में थे, बैठे थे। मैंने उन साधु महाराज से कुछ और पूछना चाहा। अतः डाक्टर साहब से कहा कि "आप उस साधु को बुलादें जो अभी यहाँ से गये हैं।" डॉक्टर साहब सुनकर अवाक् रह गये और बोले 'कौन से साधु यहां तो कोई साधु आया ही नहीं' मैं आश्चर्य में पड़ गया कि क्या स्वप्न में साधु का दर्शन हुआ

है? पर स्वप्न हो नहीं सकता था क्योंकि डॉक्टर साहब से धीरे-धीरे बातें हो रही थीं। जो कुछ हो प्रभु की लीला विचित्र हैं। यह रहस्य क्या था इसका आज तक उद्‌घाटन नहीं हुआ। पर प्रभु की चेतावनी अवश्य थी और आदर्श सेवा संघ छोड़ने में उनकी स्पष्ट सम्मति प्रतीत हुई। अतः दिनांक १६ मई १६४३ को संघ से त्यागपत्र दे दिया गया।

केदारेश्वर पर नवाह्न पाठ

त्यागपत्र तो दे ही दिया गया पर आगे क्या करना चाहिये यह स्पष्ट न था। अतः यह विचार उदय हुआ कि पोहरी से दो मील अग्निकोण में निर्जन सघन वन के मध्य सुन्दर नदी के तट पर पर्वत माला की गुफा में प्राचीन केदारेश्वर मंदिर है, वहां ही चला जावे और शंकरजी को नवाह्न पाठ सुनाया जावे। जैसी वे मति देवें उसी के अनुसार कार्य किया जावे। निश्चय होते ही दिनांक १७ मई १६४३ को प्रातः ही केदारेश्वर के लिये मैं चला गया और भगवान् शंकर की कृपा से उनके समीप रहकर प्रथम दिन का पाठ पूर्ण किया ही था कि महात्मा भरतदासजी महाराज आ गये। आप करौली में थे आपको प्रेरणा हुई कि वे केदारेश्वर जल्दी पहुँचें उनकी वहाँ आवश्यकता है। महात्माजी ने आकर मुझे केदारेश्वर पर देखा तो वे बड़े प्रसन्न हुए। उस दिन से नवाह्न पाठ की पूर्णाहुति तक महात्माजी के द्वारा मुझे सभी प्रकार की सुविधा प्राप्त हुई और महात्माजी की सम्मति से यह निश्चय हुआ कि "सबसे पहिले परमात्मा में पूर्ण निष्ठा लाई जावे और फिर स्वतंत्र रूप से शिक्षण कार्य करना चाहिये। इस दृष्टि से मैंने यह संकल्प किया कि नित्य के पहिनने के वस्त्रों से ही यानी खादी का कुर्त्ता, धोती व टोपी से ही बिना वेष बदले एक माह की पैदल यात्रा की जावे। इस यात्रा में अपने साथ न तो साथी रखा जावे और न द्रव्य। प्रभु जब भरण-पोषण करते हैं और उन्हें जीवन की रक्षा करना है तो वे अवश्य सहायता देंगे, अन्यथा जीवनलीला तो समाप्त होने को है ही, शीघ्र हुई तो क्या और देर से हुई

तो क्या।" अस्तु, इस संकल्प को सबल बनाने के हेतु पोहरी के प्राचीन भव्य जलमंदिर पर मैं आगया और ३१ मई तक जलमंदिर पर ही रहा। जलमंदिर के पुजारी व बाग के माली के लड़के ने इन दिनों मेरी विशेष सेवा की।

एक माह की पैदल यात्रा और प्रभुनिष्ठा का प्रत्यक्ष चमत्कार

१ जून १९४३ को प्रातःकाल ४ बजे उठकर स्नान आदि से निवृत्त होकर चलने की तैयारी से जलमंदिर में विराजमान राधा-कृष्ण के विग्रह को मैंने साष्टांग प्रणाम किया। पुजारीजी ने बड़ी उत्सुकता से भगवान् की उतरी हुई माला मेरे गले में डाली तथा चरणोदक व तुलसी देकर मेरी ओर देखने लगे। पुजारीजी के मन में चाहे जो हो पर मुझे अत्यन्त दुःख हुआ कि उस समय मेरे पास एक भी पैसा न था जो उन्हें भेंट किया जाता। मेरे मन में यह उत्कट अभिलाषा कि मन्दिर पर १ रु. व एक नारियल तथा एक खादी का गमछा चढ़ाया जाय तथा माली के बालक को कम से कम एक चवन्नी दी जाय,पर लाचारी थी। इतने में मेरे लघुभ्राता श्री देवीलालजी और अध्यापक श्री प्रभुलाल जैन आये और उन्होंने मेरे हाथ से कम्बल आदि का बन्डल जो कि मेरी एकमात्र सामग्री थी, अपने हाथ में लेली। श्री प्रभुलालजी ने अनुरोध किया कि "आप प्रस्थान के समय विद्यालय होकर जावें। यद्यपि ग्रीष्मावकाश के कारण छात्र व अध्यापकों का तो अभाव है फिर भी आपके अन्तिम संदेश सुनने के हम इच्छुक हैं।" अस्तु, उनके साथ मैं मंदिर से विद्यालय पर, जो प्रस्थान के मार्ग में ही था आया। जो अध्यापक व छात्र वहाँ ही रहते थे वे तथा ग्रामवासी एवं ग्रामकलामंदिर के कर्मचारी तथा कुछ महिलाऐं एकत्रित थीं। पूज्य पंडितजी की माताजी यद्यपि रुग्ण थीं पर उनसे रहा नहीं गया और वे भी पोहरी के अन्दर से बाहर कृष्णगंज में आईं और आते ही प्रेमाश्रु टपकाते हुए गद्‌गद् वाणी से आशीर्वाद दिया और प्रभु की शरण में मैं जा रहा हूँ समझकर तिलक किया व १) रुपया व १

नारियल तथा एक खादी की तौलिया भेंट की। प्रभु किस प्रकार सत्संकल्प को पूर्ण करता है इसकी झलक उसकी शरण में चलना आरम्भ करते ही प्राप्त हुई। मैंने तत्काल अपने सहयोगी मित्र श्री रतनलाल दीक्षित जी को वे तीनों भेंट की वस्तुयें जलमंदिर पर चढ़ाने दे दीं। फिर श्री प्रभुलाल जैन के सेवक ने एक चवन्नी भेंट की जिसको भी मैंने मंदिर के माली के लड़के को देने को दे दी। इस प्रकार जितनी भेंट मंदिर पर देने का मुझे विचार उत्पन्न हुआ वह पूर्ण हुआ। मैंने विदाई के शब्द यही कहे कि "मुझे तो अब प्रभु ही दिख रहे हैं और मैं अब उन्हीं की शरण हूँ। आप सब भी उन पर पूर्ण विश्वास कर उनके लिये ही समस्त गृह कार्य करें" इतना कहकर मेरा गला भर आया और मेरे अश्रु बहने लगे। उपस्थित जनसमूह भी विह्ल हो गया। उस समय तेरह रुपये दो आने मुझे भेंट मं और भी प्राप्त हुए जिन्हें मैंने ग्रामकलामंदिर के कर्मचारी व छात्रों में मिठाई आदि के रूप में बँटवा देने को कहा। मैं मन ही मन कहने लगा कि "हे प्रभु तुझे धन्य है जिस पोहरी से विद्यालय को एक रुपया देने में भी लोग झिझकते थे आज प्रभु के नाम पर बिना माँगे वे प्रातःकाल ही तेरह रुपये दो आने देने में हर्ष और अपना अहोभाग्य मान रहे हैं।" प्रभु लीला के इस चमत्कार का अनुभव कर मैंने पोहरी से प्रस्थान किया। जन समूह लगभग १ मील तक साथ-साथ आया और बड़े आग्रह से वापिस किया गया। केवल ५ व्यक्ति फिर भी वापिस नहीं गये और ४ मील तक आये।सम्पूर्ण पैदल यात्रा में गायत्री मंत्र की ध्वनि की जा रही थी। देवरी ग्राम की जनता कलश आदि लेकर सड़क पर आगई और उसने भी स्वागत किया। इस प्रकार २० मील शिवपुरी तक स्थान परिचित होने के कारण विशेष स्वागत हुआ। श्री शिवकुमार अध्यापक आग्रहपूर्वक शिवपुरी तक साथ रहे।

यात्रा में घटित अन्य असाधारण घटनाऐं

समस्त १ माह की पैदल यात्रा पोहरी से चलकर सीतापुर तक

लगभग ३३५ मील की सानन्द सम्पन्न हुई। प्रभु कृपा से दोनों समय दैनिक आहार के सदृश ही भोजन प्राप्त हुआ। प्रायः संध्या को नित्य की भाँति ही दूध भी प्राप्त होता गया। केवल दो या तीन बार ही एक दफा भोजन प्राप्त हुआ। ग्रामों में व देवस्थानों पर पूर्ण आतिथ्य हुआ शहरों में यथोचित आतिथ्य का अभाव सा प्रतीत हुआ। वैसे निर्वाह सर्वत्र ही होता गया। इस यात्रा में जो जो प्रमुख घटनाएँ घटीं जिनसे प्रभु निष्ठा में दृढ़ता आई वे इस प्रकार हैं -

ग्राम अमोला

शिवपुरी से १४ मील सुरवाया, पहिला अपरिचित स्थान था, पर ऐनकेन-प्रकारेण यहाँ भी यह समाचार कि प्रधानअध्यापक पोहरी परमपिता के आसरे सब कुछ छोड़कर पैदल यात्रा करने चले हैं, पहुँच गया था। अतः लोगों ने मुझे अनुमान से पहिचान लिया और मेरा उचित आतिथ्य किया गया। परन्तु सुरवाया से आगे एकदम अपरिचित ग्राम थे। सुरवाया से दूसरा स्थान विश्राम के लिये अमोला निश्चय किया। यह स्थान एकदम अपरिचित होने से नाना प्रकार की कमजोरियाँ आने लगीं। लगभग ११ बजे दिन के अमोला पहुँचा। गर्मी के दिन थे। यात्रा की थकावट थी। भूख भी बड़ी जोर से लग रही थी। मानसिक विचार किसी परिचित की तलाश में जुट गये। सोचते सोचते स्मरण आया कि यहाँ पोहरी जागीर के चौबे परमानन्दजी अध्यापक हैं। उनके यहाँ आतिथ्य हो ही जावेगा। प्रभु के नितान्त भरोसे रहना महान् कठिन है। आतिथ्य के लिये तो प्रभु-भक्तों पर ही दृष्टि जाती है। भीतर से कभी ये भाव उठें कि "प्रभु सर्वत्र हैं, चाहे जहाँ ठहरा जाय" पर फिर कमजोरी की भावना आवे और परिचित व्यक्ति की ओर ही दृष्टि जावे। अन्ततोगत्वा कमजोरी के भाव की जीत हुई और ग्राम के बाहर कुछ बालकों को देखकर उनसे परमानन्दजी के स्कूल का पता मैंने पूछ ही लिया। प्रभु की लीला बड़ी विचित्र है। जब मानव उनके नाम पर चलकर उन्हें धोखा देता है तो वे स्वयं उसे सन्मार्ग

पर लाते हैं। बालकों ने उत्तर दिया कि "परमानन्दजी मास्टर जी तो अपनी बहिन के विवाह में छुट्टी पर गये हैं।" यह सुनते ही मुख फीका पड़ गया। जी घबराने लगा। सिर मुड़ाते ही ओले पड़े। परिचित स्थान अपरिचित ही हो गया। धीरज रखकर थोड़ी दूर ग्राम में चलकर एक बिना अधिक देखरेख वाला मंदिर दिखा। वहीं पहुँच गया, कम्बल बिछाकर रामायण का पाठ किया। गीता पढ़ी भरथरी के वैराग्यशतक के दो तीन श्लोक पढ़े। पर इन सबसे भूख न मिटी। मन्दिर के अहाते में एक कूप देखकर एक लोटा पानी खींचा और भूख को पानी से संतुष्ट करना चाहा पर पानी मुँह में देते ही मुँह का स्वाद एकदम बिगड़ गया। पानी एकदम खारा था। एकाएक मुख से निकला "हे भगवन् अन्न की बात तो दूर पानी के भी लाले हैं यहाँ तो" अत्यन्त वेदना से सीताराम सीताराम कहने लगा पर साथ ही साथ अपने बिना ठीक से सोचे संकल्प लेने पर भी पछताने लगा पर अब क्या था वापिस होना भी मरण सदृश था। इस ऊहापोह में लगभग १ बजे का समय होगया। अचानक क्या देखता हूँ कि १०-१२ वर्ष की एक बालिका एक थाल में पूरियाँ व एक दोने में शकर लिए खड़ी है और कहने लगी कि "महाराज भोग लगा दीजिये" मैं बड़े संकोच में पड़ गया। मैंने समझा शायद यह बालिका भूल से मुझे पुजारी समझी है। तब मैंने उस बालिका से कहा कि "बाई, मैं पुजारी नहीं हूँ। पुजारी को बुला लो वह भोग लगा देंगें" पर बालिका ने रूखा मुखकर कहा कि "पुजारी तो बहुत कम मिलता है, मंदिर पर रहता ही नहीं है। तुम्हीं भोग लगादो" अब मैं बड़ी दुविधा में पड़ गया। एक तो मुझे भोग लगाना भी नहीं आता था और दूसरे वेशभूषा भी मेरी पुजारी की नहीं थी और झूठमूठ को भोग लगाया भी जावे और कहीं उसी बीच पुजारी आ जावे तो बड़ी फजीती होगी। इन उलझनों में पड़ा था। इतने में मेरे अन्तःकरण में से ऐसी आवाज सुनाई दी कि " जबसे भूखे-भूखे

चिल्ला रहे थे और जब भोजन आया तो हिचक रहे हो लगाओ भोग भगवान को।" बस इस आवाज से हिम्मत आई और झट बालिका से थाली ले भगवान् के आगे रख दी। थोड़ा जल चारों और फेर उनका नाम ले तीन पूरी व शकर निकालकर शेष भोजन सामग्री सहित थाली बालिका को वापिस कर दी। बालिका हँसती-हँसती चली गई। मैं झटपट मंदिर से बाहर अपने स्थान पर आ गया। पूरियाँ मोटी-मोटी थीं, अतः तीन ही क्षुधातृप्ति हेतु पर्याप्त थीं। अब खारे पानी को स्मरण कर खिन्नता सी हुई कि मंदिर की परिक्रमा में कुछ बालक खेलते दिये। उन्होंने अपने आप ही कहा कि "महाराज, ठंडे मीठे पानी की मटकी इधर रखी है। आप पानी यह पीना। कुंए का पानी खारा है उसे न पीना।" पूरी क्या थीं, अमृत थीं; एकदम शांति आ गई और मीठा ठंडा जल पीकर तो रोमांच हो गया और भगवान्को धन्यवाद दिया। इसके बाद विश्राम किया। किन्तु लगभग ४ बजे फिर धुन सवार हुई कि "अन्यत्र चला जाय। यहाँ तो कोई पूछता ही नहीं है। संयोग से पुजारी की अनुपस्थिति में पुजारी का भाग लेकर क्षुधा निवृत हो गई हैं अब आगे अन्य ग्राम को चलना चाहिये शायद वहाँ कोई आतिथ्य करे।" अतः ज्योंही कम्बल समेटकर बंडल बनाके चलने लगा कि कुछ बालक सामने आ गये और बोले-"महाराज कहाँ जाते हो? रात को यहीं ठहरो। सुबह जाना। हम अभी अपने भैया को बुला लाते हैं।" और उनमें से दौड़कर एक बालक गया और एक आदमी को बुला लाया। उस आदमी ने कहा-"महाराज, आप चुपचाप बिना किसी को सूचित किये मंदिर में ठहर गये। आपको कहना चाहिये था। यहाँ राजा साहब की गढ़ी है और उनके कामदार आये गये सज्जनों का व साधु-सन्त का सत्कार करते हैं।" इतने में खबर हो जाने से कामदार भी आ गये और फिर क्या था? संध्या का भोजन कामदार साहब ले आये व रात्रि को १०-११ बजे तक लोग इकट्ठे

रहे। अनेक प्रकार की वार्तालाप चलती रही। ग्राम बहुत बड़ा नहीं था अतः मुझे ध्यान आया कि लोगों से पुछवाया जाय कि आज दिन में किसके यहाँ से वह बालिका भोग लगाने पूरियाँ लाई थी। इस समाचार से लोग दंग रह गये और उनके पूछताछ करने पर भी कुछ भी पता न चला कि वह बालिका कौन थी और किसके यहाँ से पूरी लाई थी। उस दिन किसी के यहाँ कोई विशेष बात नहीं थी। अब प्रभु की लीला का भेद खुला और हृदय विह्वल हो गया। परम पिता परमात्मा की असीम कृपा पर सिर झुकाया और विश्वास हुआ कि निस्सन्देह परमात्मा चींटी से कुंजर तक सबका भरण-पोषण करता है। वह ग्राम की बालिका के रूप में साक्षात् अन्नपूर्णा ही थी जिसकी धुंधली आकृति अब भी वैसी ही दृष्टि के सम्मुख है।

ग्राम करैरा

अमोला में रात्रि विश्राम कर प्रातः ही आगे चला और आगे के कस्बा करैरा पर विश्राम करने का सोचा। रास्ते में नाना प्रकार के विचार आते थे। यद्यपि मुख में मंत्र जप भी चलता रहता था। मानव मस्तिष्क की रचना भी बड़ी विचित्र है। पोहरी में व अमोला में दो जगह प्रभु का चमत्कार देखकर भी विश्वभरणपोषण प्रभु पर अडिग विश्वास नहीं हुआ। फिर भी कल्पनाएँ उठने लगीं कि ''अमोला में मंदिर पर ठहरने के कारण ही मेरा आतिथ्य हो गया यदि बस्ती न होती तो संभवतया वैसा न होता। अतः इस बार ऐसी जगह ठहरा जाय जहाँ से बस्ती दूर हो। ऐसे ही मैं अपनी विचार-धाराओं के बोच करैरा ग्राम आ गया। उसी समय संयोग से शिवपुरी की रोडवेज की बस आ गई। बस स्टेण्ड पर परिचित व्यक्ति भी दिखे पर मुझे कोई देख न पाये इस दृष्टि से चुपके से स्टेण्ड पर बैठे हलवाई से एकान्त मंदिर का पता पूछा और पता लगा कि लगभग बस्ती

से डेढ़-दो मील दूर बाबा का बाग है। वह स्थान सुनसान है। अतएव शीघ्रता व उत्साह से बाबा के बाग पर मैं पहुँच गया। यद्यपि भूख का समय हो गया था और चलने की भी थकावट थी पर हृदय में उल्लास था, यह जानकारी लेने का कि देखें भगवान् यहाँ क्या प्रबन्ध करते हैं? बाबा का बाग एक पुराना स्थान है। एक बावड़ी है, जो कुछ पुरानी भी थी। एक हनुमानजी का मंदिर था जिसका चबूतरा आदि नवीन बनवाया गया थे। स्थान था एकदम बस्ती के बाहर। प्रेम से बावड़ी में स्नाान किया। वस्त्र धोकर सुखाये और भूखे ही हनुमानजी के चबूतरे पर एक ओर बैठकर जप करने लगा और यह निश्चय किया कि ''प्रभु देते तो अवश्य हैं, यदि संध्या के ७ बजे तक वे भोजन दे देंगे तब तो यहाँ रहना चाहिये अन्यथा स्नान व संध्यादि से निवृत होने के उपरान्त फिर यहाँ से सड़क पर चलकर विश्राम करना चाहिये, क्योंकि उस स्थान से सड़क तक मार्ग ऊबड़ खाबड़ था। और भोजन न मिला तो समझेंगे कि भगवान् ने आज उपवास का दिन रखा है।'' जप करते-करते ५ बज गये, ६ बज गये। बार-बार घड़ी पर दृष्टि जावे। फिर विचार किया कि ''आज तो भगवान् उपवास करावेंगे अतः प्रेम से एक घंटा और पाठ करलो ७ बजते ही स्नान आदि करके आगे चलेंगे।'' समय पूर्ण हुआ। स्नान किया व संध्या करने बैठ गया। नित्य का जप आरंभ किया। जप करता जाता था और जबरदस्ती आँखें बंद कर लेता था पर आँखे देख रहीं थीं भोजन देने वाले व्यक्ति को। थोड़ी देर बाद एक व्यक्ति मैला सा कुरता पहिने काली फटी टोपी लगाये और नंगे पैर आता दिखाई दिया। उससे मुझे आशा नहीं थी क्योंकि वह तो स्वयं अपने लिये सहायता की आशा रखता था। वह व्यक्ति मढ़िया की ओर गया और नमस्कार करके हनुमानजी की ओर आया और फिर हनुमानजी के दर्शन न करते हुए मेरे पास आकर खड़ा हो गया और एकाएक बोला कि ''महाराज आप यहाँ

कबसे बैठे हो?' मैंने अनमना सा होकर उत्तर दिया कि 'दोपहर से '। फिर उसने एकदम कहा कि 'आपने भोजन नहीं किया है मैं सामान लाता हूँ आप बना लीजिये। मैंने उत्तर दिया कि 'बना हुआ तो मैं ले लूँगा। इस पर उस व्यक्ति ने पूछा कि "आप आगे कहाँ जाना चाहते हैं?" मैंने कहा 'दिनारा' जो आगे का ठहरने का स्थान सोचा था। बस, उसने हँसते हुए मेरा कम्बल आदि ले लिया और अपने साथ चलने को कहा। उसने कहा कि "आप यहाँ से मेरे घर चलें। वहीं भोजन कीजिएगा। मेरा नाम हरानन्द है और मैं पटवारी हूँ। मेरे मकान के पास पहाड़ियों पर एक वयोवृद्ध ब्रह्मचारी रहते हैं उनसे सत्संग करना। और वहाँ से दिनारा का रास्ता भी ठीक पड़ेगा। दो मील की बचत हो जावेगी।" मैंने श्री हनुमानजी के चरणों में प्रणाम किया और मन ही मन भगवान् की सत्ता को अनेक धन्यवाद दिये और हरानन्दजी के साथ चलने लगा। मार्ग में मैने श्री हरानन्द जी से पूछा कि 'क्या तुम बाबा के बाग रोज आते हो?' तो उन्होंने उत्तर दिया कि नहीं, मैं लगभग १ वर्ष से यहाँ नहीं आया हूँ। मुझे तिजारी आती थी मुश्किल से तिजारी टूटी। मैं अपने कागजात आज लिख रहा था कि कचहरी के ७ के घण्टे बजे। घंटों की आवाज सुनते ही मेरे अन्दर प्रेरणा हुई कि बाबा के बाग चलना चाहिये और दर्शन करना चाहिये। यहाँ आते ही एकदम प्रेरणा हुई कि यह ब्राह्मण दिन भर के भूखे हैं इन्हें भोजन कराओ अतः मैंने आपसे भोजन के लिये प्रार्थना की।" श्री हरानन्दजी को ठीक ७ बजे बाबा के बाग आने की प्रेरणा से मैं पुलकित हो गया और भगवान् की लीला का वास्तविक रूप पहिचाना। फिर मैंने हरानन्दजी से कहा कि "मैंने भी ७ बजे तक भोजन प्राप्त होने का संकल्प किया था और ठीक ७ बजे तुम्हें भी प्रेरणा हुई।" इन दोनों बातों का मेल एक साथ मिलने से हरानन्दजी भी गद्‌गद हो गये और बोले कि "आज मेरे भाग्य उदय हो गये जो हनुमानजी ने मुझ पर कृपा

की। मैं तो गरीब आदमी हूँ। वे किसी सेठ साहूकार को भी भेज सकते थे।" इस प्रकार प्रभु चर्चा करते घर पहुँचे और प्रसाद पाया। यह घटना ग्राम में सर्वत्र फैल गई और बड़ी रात्रि तक लोगों की भीड़ बातचीत करती रही। लगभग ६ बजे पहाड़िया पर पहुँचकर ब्रह्मचारीजी के दर्शन किये और वहीं विश्राम किया।

करैरा से दिनारा, झाँसी, बड़ागाँव, चिरगाँव,मोठ, पूँछ, कोंच से हरदोई होता हुआ उरई पहुँचा। यहाँ रेलवे स्टेशन के पास नई बस्ती में बाबू ओमप्रकाश गुप्ता ओवरसियर रहते थे। उनके निवास स्थान पर मैं लगभग साढ़े दस बजे प्रातः पहुँचा। मैं इस परिवार से एकदम अपरिचित था। हाँ, कौंच के शिवधरणजी माहेश्वरी, ओवरसियर ने मुझे परिचय-पत्र श्री ओमप्रकाशजी गुप्ता को दे देने का कहा था जिससे मुझे उनके यहाँ ठहरने में असुविधा न हो। किन्तु परिचय से ही शहरों में अतिथि ठहर सकते थे इस भावना से कहीं मेरी प्रभु निष्ठा में कमी न आ जावे, संभव है, इसी दृष्टि से मेरी बुद्धि ऐसी हो गई कि मैंने श्री ओमप्रकाश गुप्ता के यहाँ ठहरने में उस पत्र का उपयोग ही नहीं किया। हाँ विदा के समय उस पत्र को उन्हें दे दिया। मैंने केवल मकान के बाहर से ही गुप्ताजी हैं क्या? आवाज दी। आवाज सुनते ही ४-५ वर्ष की आयु के बच्चे ने किवाड़ खोल दिये और ओट में खड़ी हुई अपनी माँ के संकेत पर कहा "आप भीतर आजाइये" मेरी आकृति से मुझे थका हुआ ब्राह्मण बटोही समझा और नौकरानी से कहलवाया कि आप बैठक में विश्राम कीजिये। बाबूजी दोपहर के एक बजे कार्यालय से आवेंगे। आप घर में ही स्नान करना पसन्द करें तो यहाँ पानी भिजवा दें और कुएँ पर स्नान करना चाहें तो रस्सी-बाल्टी ला दूँ। कुँआ बिल्कुल पास में ही था। मैंने गुप्ताजी की धर्मपत्नि को साक्षात् देवी समझा। मर्यादा में रहते हुये अपरिचित अतिथि की भी सेवा में कोई कमी न रह जावे इसका भी इस देवी को कितना ध्यान है देख-देख कर मुझे आश्चर्य लगता था। साथ ही मुझे भीतर ही

भीतर हृदय में धड़कन भी होती थी कि कहीं ओवसरसियर साहब को इस प्रकार का सत्कार न रुचा तो फिर परिस्थिति क्या होगी? किन्तु धन्य है उस माँ की सात्विक वृत्ति, प्रभुनिष्ठा एवं हिन्दू संस्कृति से परिपक्व बुद्धि को! स्नान करके लौटने पर मैंने बैठक के एक भाग में आसन बिछा देखा। आसन के सामने पटा रखा था उस पर जलपात्र रखा था। मैं पाठ, पूजा से जैसे ही निवृत्त हुआ कि उस देवी ने ओट में रहते हुए ही बालक की सहायता से भोजन की थाली पटे पर रखवा दी और जल रखवा दिया। मैंने भोजन कर लिया। फिर बच्चे से उन्होंने कहलवा दिय। कि आप बैठक में ही विश्राम करें" मैं थका हुआ तो था ही। भोजन के उपरान्त निद्रा आने लगी। कभी-कभी नींद उचट जाती थी कि कहीं ओवरसियर साहब आ तो नहीं गये। मुझे नहीं मालूम कि ओवसियर साहब कब आये, कब उन्होंने भोजन किया और मेरे संबंध में क्या बात हुई। लगभग ढाई-तीन बजे कुछ आहट सी हुई। मेरी आँख खुल गई। मैंने देखा कि ओवरसियर साहब मुस्कराते हुए हाथ में फलों की तश्तरी लिये हुए आये और पास के दूसरे पलंग पर बैठ गये और मेरे सामने तश्तरी रख दी। मैंने कहा कि आपके दर्शन हुए बिना ही मेरे जैसे अतिथि का आपके परिवार ने भव्य स्वागत कर दिया है। उन्होंने कहा कि "श्रीमान् जी, गृहस्थ का धर्म यही है।" संध्या तक विभिन्न विषयों पर विशेषकर शिक्षा सम्बन्धी चर्चा होती रही। रात्रि को शयन करके मैं चार बजे उठ बैठा और शौचादि से निवृत्त हो मुख मार्जन करके जाने के लिये उनसे विदा माँगी कि क्या देखता हूँ कि श्री ओवरसियर साहब सपरिवार द्वार पर आ गये। उनकी धर्मपत्नीजी के हाथ में वर्क चढ़ा हुआ हलुआ भरी थाली थी। उन्हें मैंने सर्व प्रथम ही देखा। वे बड़ी नम्रता से बोलीं कि "थोड़ा नाश्ता कर लीजिये तब जाईयेगा।" मैंने कहा-"माताजी प्रातः सूर्योदय से पूर्व ही मुझे कुछ भी खाने का अभ्यास नहीं। क्षमा करें।" तब माताजी ने कहा, "महाराज, हम लोग गृहस्थ हैं। गृहस्थ का धर्म है

अतिथि का सत्कार करें और अपने गृह से उसे भूखा कभी न भेजे। यदि अतिथि भूखा जाता है तो अपने सब पाप गृहस्थ को दे देता है और गृहस्थ के पुण्यों को ले जाता है। अतः हम तो आपके पुण्य लेना और अपने पापों को क्षीण करना चाहते हैं।" मैं निरुत्तर हो गया। थाली में से थोड़ा सा हलुआ ले लिया और शेष भाग को उस परिवार में बाँटकर अत्यन्त हर्ष से प्रस्थान किया। मन ही मन प्रभु कृपा पर मुग्ध होता जाता था कि परदेश में भी अपरिचित व्यक्ति के साथ आत्मीयता से ओत-प्रोत व्यवहार करने वाले भी गृहस्थ हैं जिन्हें प्रभुसत्ता तथा भारतीय संस्कृति में अटूट विश्वास है। निस्सन्देह उनके विश्वास से मेरी विश्वास की भावना को पर्याप्त बल मिला।

अब मुझको पूर्ण विश्वास होगया कि परमपिता परमेश्वर का ही अखिल ब्रह्माण्ड में राज्य है। प्रत्येक परिवार उन्हीं का परिवार है। चाहे जिस परिवार में ठहरा जाय वह उनका ही तो है। यदि कोई भोजन न भी दे तो यही समझा जावे कि अपने ही निज के घर में भोजन अभी बना ही नहीं तो दिया कहाँ से जावेगा। जहाँ तैयार होगा वहीं तो मिलेगा। इस दृढ़ निष्ठा से एक माह का संकल्प १ जून १९४३ से ३० जून १९४३ तक का सीतापुर में समाप्त हुआ। सर्वत्र जहाँ-जहाँ विश्राम किया प्रभु कृपा से सर्वत्र आनन्द ही रहा। पूर्ण विश्वास की लहर हृदय में सदैव हर्षोल्लास से उत्साहित करने लगी।

पाठशालाओं का अनुभव

अपने पूर्व निश्चय के अनुसार पाठशाला स्थापित करने से पूर्व प्राचीन पद्धति व आधुनिक युग की आवश्यकताओं की पूर्ति कहाँ हो रही है, ऐसी संस्थाओं को देखने की इच्छा से मैं हरिद्वार पहुँचा। स्वामी श्रद्धानन्दजी द्वारा स्थापित गुरुकुल कांगड़ी को देखा। पाँच दिन ठहरकर बारीकी से प्रत्येक अंग का दर्शन किया। समय-समय पर अन्य गुरुकुल, ब्रह्मचर्य आश्रम, वानप्रस्थ आश्रमों का भी अनुभव किया।

गुरुकुल पद्धति वास्तव में सराहनीय पद्धति है अवश्य, पर इस पद्धति के अध्ययन आदि के ढंग मुझे अधिक प्रभावित न कर सके। गुरूकुल के ३ संस्कारों ने मुझे बहुत प्रभावित किया। (१) छात्रों में निर्भीकता के संस्कार (२) छात्रों का उत्तम स्वास्थ्य (३) दुग्ध व सात्विक भोजन की व्यवस्था।

क्रम-क्रम से गुरुकुल, शासन के अवलम्बित होता जा रहा है। संचालकों में से भी कुछ व्यक्ति इस कारण असंतुष्ट से थे। शासकीय कार्यालयों की भाँति अनेक कार्य होने लगे थे। अतः ऐसा लगने लगा था मानो सरकारी कालेज को गुरुकुल का आवरण पहिना दिया गया हो। कन्या महाविद्यालय पर तो एकदम आधुनिक सभ्यता की छाप थी। आचार्या स्वयं लिपस्टिक लगाये अंग्रेजी संस्कृति की अनुयायी थीं। गुरुकुल कांगड़ी के रहन सहन से असन्तुष्ट होकर कुछ सन्तों ने पास में ही ज्वालापुर महाविद्यालय को जन्म दे दिया था। अत्यन्त शान्त व सात्विक वायुमण्डल में यह संस्था स्वावलम्बी पद्धति से चल रही थी। स्वामी आनन्द के दर्शन कर सचमुच आनन्द की लहर दौड़ गई। ऐसे ही गुरुकुलों की भारत जैसे देश के लिये आवश्यकता है।

गुरुकुल के निकट ही स्वामी सत्यदेव परिव्राजक का आश्रम था। आप प्रज्ञाचक्षु हैं। एक रात्रि आपके आश्रम में निवास किया। आपका स्वस्थ जीवन और स्वतंत्र जीवन श्लाघनीय है। आपके अमेरिका के अनुभव सुने। आपका यह विचार माननीय था कि 'संसार को सबल बीज की आवश्यकता है निर्बल वृक्ष के बीज बेकार हैं। उन्हें नष्ट कर देना चाहिये।'

स्वामी शिवानन्दजी से भेंट

गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार से ऋषिकेश पहुँचकर महात्माओं के सम्पर्क में कुछ समय व्यतीत करने की दृष्टि से मैं ऋषिकेश को पैदल ही चल दिया। हरिद्वार से ऋषिकेश १६ मील है। सुरम्य पथ है। एक ओर

पर्वत शृंखलाओं से सटी हुई भागीरथी बह रही है। भागीरथी का स्वच्छ चौड़ा पाट सहज ही मन को हर लेता था। एकादशी के व्रत का दिन था। सात मील चलकर सत्यनारायण चट्टी पर भगवान् सत्यदेव के दर्शन किये। प्रसाद में चने दिये जाते हैं पर व्रत के कारण मुझे अन्न तो लेना था ही नहीं अतः तुलसीदल व चरणामृत ले आगे बढ़ा। भूख से चला नहीं जाता था, पर विश्वास था और उससे बल मिलता जाता था। थोड़ी दूर और चलकर एक झरना कलकल शब्द करते हए बह रहा था। उसके किनारे बैठकर विश्राम किया। हाथ-पैर धोये और समीप के आम के वृक्ष के नीचे बैठकर गायत्री जप करने लगा। वृक्ष के नीचे लगभग एक फुट ऊँची घास उगी हुई थी। उस घास पर बैठे हुए जो सुख मिला वह मखमल के गद्‌दे पर बैठने से शायद उतना न मिलता। प्रत्यक्ष में तो आम वृक्ष में पत्ते ही पत्ते दिखते थे, फल कहीं भी नहीं दिखता था। किन्तु, जप करते-करते आम के पेड़ से कुछ गिरने की आवाज हुई। बुद्धि ने स्पष्ट कहा कि 'अवश्य आम का ही फल होगा। जप से निवृत होकर देखेंगे।' शांति से निश्चित मालायें फेरीं। जप समाप्त हुआ। सामने दृष्टि डाली तो एक बड़ा अचारी आम पका हुआ पड़ा था। यह आम किसी प्रकार पेड़ में लगा रह गया होगा। भगवान् को अनेक धन्यवाद देकर फल उठा लिया। जल से धोकर खाया। गूदा ही गूदा था और अत्यन्त मधुर स्वाद। खाते ही पूर्ण तृप्ति हो गई। हाथ मुँह धोकर प्रसन्नता से आगे बढ़ा और संध्या के लगभग ४ बजे ऋषिकेश पहुँचा। स्वामी शिवानन्दजी की महिमा पहले से ही ज्ञात थी। अतः स्वर्गाश्रम के निकट मुनि की रेती पर जहाँ गंगा तट पर उनका सुरम्य आश्रम था वहाँ पहुँचकर स्वामीजी के दर्शन कर कृतार्थ हो उन्हीं की छत्रछाया में कुछ दिन विश्राम किया।

स्वामीजी गौर वर्ण, सुन्दर, शरीर, हृष्ट-पुष्ट, ऊँचे डील के सन्त थे। वे पहिले डॉक्टर थे, फिर संन्यास ले लिया था। आपकी भाषा तैलगू होने से वे अंग्रेजी में ही अधिक व्यवहार करते थे।

आप अत्यन्त दयालु महात्मा थे। आपका आतिथ्य का भाव सर्वोपरि था। अतिथि, आश्रम की सेवा से अपने घर को भी भूल जाते थे। आश्रम का दैनिक कार्यक्रम अत्यन्त आकर्षक था। आपको जप पर अटूट विश्वास था। जप करना ही आपका प्रमुख उद्‌देश्य था। वे भगवान् के ध्यान में सदैव लीन दिखते थे। आपकी वाणी में रस भरा था। जब कीर्तन करते थे तो अमृत-वर्षा होती थी। छोटी पहाड़ी पर एक सुन्दर मंदिर के पास आपकी विशाल गुफा थी। प्रार्थना हाल में आपके द्वारा अंकित कराये गये वाक्य (Even this will pass away. Balance your mind in joy and sorrow) अमूल्य हैं। जीवन संग्राम में सफल होने के लिये ये वाक्य अमोघ हैं।

श्री बदरिकाश्रम की यात्रा

श्री शिवानन्दजी के आश्रम से लगभग ३ मील दूर लक्ष्मण झूला चट्‌टी है और वहाँ से सामने ही स्वर्गाश्रम दिखता है। संध्या को नित्य टहलने का मेरा कार्यक्रम था। १ अगस्त, १९४३ को तिलक जयन्ती का दिन था। चिन्तन करते हुए लगभग ८ फीट चौड़े लचकदार पुल से गंगाजी को पार कर लक्ष्मण झूला चट्‌टी पर पहुँच गया। स्वर्गाश्रम में विचरते हुए उस पथ पर जा निकला जो बदरिकाश्रम को जाता था। पथ के आरम्भ में ही एक बोर्ड लगा है जिस पर लिखा है "जो यहाँ तक आवे उसे बदरिका आश्रम के दर्शन अवश्य करना चाहिये।" इन वाक्यों ने बदरिका आश्रम के दर्शन की लालसा उत्पन्न करदी और दूसरे दिन दिनांक ०२.०८.१९४३ को प्रभु का नाम ले बदरिका आश्रम का मार्ग तय करना आरम्भ कर दिया।

देव प्रयाग में कीर्तन करने वाली देवी से प्रेरणा

क्रम-क्रम से ८ अगस्त सन् १९४३ को मैं देवप्रयाग पहुँचा। मार्ग में वर्षा के कारण गंगाजी की धार मटमैली होगई थी। रेत मिले हुए जल में नहाना, वही पान करना और उसी से बार-बार मुँह हाथ धोने से

अथवा गरमी की तौंस से आँखें दुखने लगीं और सुर्ख हो गई। चलना भी कठिन हो गया था। देव प्रयाग में पीड़ा इतनी बढ़ी कि असहनीय हो गई और उपचार का कोई साधन न देखकर लौटने की ही इच्छा प्रबल होने लगी। पैसा तो था ही नहीं, अतः ओढ़ने की अंडी और हाथ की घड़ी बेचकर ग्वालियर वापिस आने को मन आग्रह करने लगा। कभी-कभी मन यह भी कहता था कि "भगवान् सब ठीक कर देंगे। मार्ग पर बढ़ते ही चलो, पीछे लौटना अच्छा नहीं" किन्तु जो यात्री बदरीनाथ से लौटकर आ रहे थे उन्होंने कहा कि " वर्षा से मार्ग दुर्गम हो गया है। कच्चे पहाड़ टूट-टूट कर गिर रहे हैं। जगह-जगह मार्ग अवरुद्ध हो गया है।" इस चर्चा ने रही सही हिम्मत भी तोड़ दी। साथ ही आँखों का कष्ट रात्रि में इतना बढ़ा कि नींद नहीं आई। प्रातः उठते ही चलने की तैयारी से हाथ मुँह धोकर जैसे ही समीप के मंदिर पर दर्शन करने गया कि एक तरुण अवस्था की भगवा वस्त्र पहिने बाई सितार पर भजन गा रही थी। भजन भक्ति से ओत-प्रोत था। भजन सुनते-सुनते शांति अनुभव होने लगी। भजन समाप्ति पर बाई ने स्वयमेव पूछा कि "आप कहाँ से आये हैं और कहाँ जावेंगें? मैंने स्पष्ट कह दिया कि "मैं ग्वालियर से आया हूँ और जाना चाहता था बदरीनाथजी की पर आँखों का कष्ट असहनीय है और मार्ग भी अब दुर्गम हो गया है। अतः वापिस लौटकर ग्वालियर जाने का विचार है।"बाई ने बड़ी प्रभावशाली मधुर वाणी में कहा-"भैया, कितनी दूर ग्वालियर से तुम आये हो और यहाँ तक आकर अब बिना बदरीविशाल के दर्शन किये लौटना अच्छा नहीं। मैं भी बद्रीनाथ से लौट रही हूँ। मार्ग ठीक है। लोग तो बढ़ा चढ़ाकर कह दिया करते हैं। दुःख भी भगवान् दूर करेंगे। उनकी शरणागति सकल कामना सिद्ध करेगी। बाई की वाणी में ऐसा तेज था कि उसने मेरे दिल को पुनः दृढ़ कर दिया और मैं हर्ष से आगे बढ़ा। आगे कस्बा श्रीनगर (पौड़ी) में दवा भी प्राप्त हुई। आँखें भी अच्छी हुई और आनन्दमय दिनचर्या पूर्ववत् चलने लगी। उस

भगवती को बारम्बार धन्यवाद देने को हृदय करता है जिनकी प्रेरणा से बदरीनाथजी का दर्शन सुलभ हुआ।

मार्ग में बूढ़ी माई से प्रेरणा

बदरीनाथजी तक यात्रा में चलने का क्रम प्रातः ५-६ मील व सायंकाल ५-६ मील इस प्रकार लगभग १२ मील दैनिक था। मार्ग में वर्षा के कारण अनेक बाधायें उपस्थित होती थीं पर प्रभु कृपा से वे दूर भी होती रहती थीं। चलते-चलते पता भी नहीं चलता था और पहाड़ का कुछ भाग एकदम खिसक कर सामने ही सड़क पर गिर पड़ता और भगवान् बालबाल बचा देते थे। कई छोटी नदियों के पार लकड़ी के तखतों पर से ही जाना पड़ता था। यात्रा के अंतिम भाग में एक विचित्र घटना घटी। एक बहुत बूढ़ी माई बिना बोले चाले मार्ग प्रदर्शन करने लगी। प्रातः ५ बजे प्रायः दैनिक यात्रा मैं आरम्भ कर देता था। थोड़ी दूर चलकर वही बूढ़ी माई आगे-आगे जाती दिखती थी। अतः यह सोचा कि एक वृद्धा तो जल्दी उठकर यात्रा आरम्भ करदे और एक जवान पुरुष पीछे चले कहाँ तक उचित है? अतः कुछ लज्जा सी आती थी। पर जितनी जल्दी उठा जा सकता था उठकर इस विश्वास से कि कहीं वृद्धा आगे न निकल जावे मैं यात्रा आरम्भ कर देता था, पर वृद्धा को सदैव आगे ही देखता। उस वृद्धा का पता भी न चलता था कि वह किस चट्टी पर विश्राम करती थी और कब कहाँ से चलती थी। पर सदैव लगभग १ फर्लांग आगे-आगे चलती दृष्टिगोचर होती थी। इस क्रम से बदरीनाथजी के निकट की पातालगंगा चट्टी पर पहुँचना था। थोड़ी दूर चलकर पाताल गंगा चट्टी साफ दिखने लगी पर एक बोर्ड इस आदेश का लगा था कि "फुटपाथ से सीधा चट्टी पर जाना खतरनाक है। घूम से जाने वाली सड़क से जाओ।" इस घूम से जाने से लगभग ३-४ मील और अधिक चलना पड़ता था। पर मेरे आगे-आगे जो वृद्धा जा रही थी उसने बोर्ड को देखा तक नहीं और फुटपाथ से झटपट चट्टी के पास पहुँचती दिखाई

दी। किन्तु, जब मैं नोटिस बोर्ड के पास आया और पढ़ा तो किंकर्तव्यविमूढ़ होगया। किन्तु, वृद्धा को आगे जाते देख यही प्रेरणा मिली कि "मरना तो एक दिन है। जब बूढ़ी माई फुटपाथ से चली गई तो जवान आदमी को जाने में क्यों हिचकना चाहिये?" यह निश्चय होते ही मैं फुटपाथ के मार्ग पर ही चलने लगा। सचमुच, लगभग ३ फर्लांग का यह मार्ग बड़ा विकट था। एक ओर तो कच्चा रेतीला पहाड़ और दूसरी ओर लगभग ५-६ फर्लांग नीचे बहती हुई पाताल गंगा मोटी सफेद नाली सी दिखती थी। फुटपाथ भी पानी पड़ने से फिसलना हो गया था। सहारा लेने का कोई स्थान न था। यदि पहाड़ी की रेत के निकले हुये किसी नुकीले पत्थर को स्पर्श करते तो मनों मिट्टी खिसक कर लुढ़कती पाताल गंगा में गिरती थी। कहीं-कहीं पास-पास फुटपाथ पर घास के चट्टे से थे और वह जमीन कुछ कड़ी थी। अतः इन पर ही पैर रख-रखकर सावधानी से चलना पड़ता था। वृद्ध माता निर्भीकता से पार हो गई और उसी को सामने देखते-देखते येनकेनप्रकारेण बिना किसी विशेष घटना के मैं भी पार हो गया। पाताल चट्टी पर पहुँच कर विश्राम किया। बहुत देर बाद जब और पीछे के लोग आये तो बड़े आश्चर्यान्वित हुए। भगवान् की महान् कृपा का अनुभव कर बार-बार अश्रुधारा बहने लगती थी। बोला न जाता था।

इसके बाद पता नहीं वह वृद्धा माता कहाँ चली गई। वे कोई पहाड़ी माई थीं और उनका ग्राम आ गया होगा या प्रभु की कोई लीला थी वही जानें। अब आगे मार्ग साफ था। आनन्द-पूर्वक बदरीनाथजी के दर्शन किये और रात्रि को विश्राम किया। एक ओर उबलते पानी के तप्त कुंड में स्नान और उसके बाद ही अलकनन्दा के अत्यन्त वेग से प्रवाहित बर्फ सदृश शीतल जल में स्नान से शरीर अत्यन्त निर्मल, हल्का और फूला सा होगया और हृदय आनन्द से प्रफुल्लित हो गया। इस प्रकार बदरीविशालजी के दर्शन कर पुनः वापिस ऋषिकेश के लिये ही मैं चल

दिया।

ऋषिकेश लौटना और लौटते समय पाताल गंगा चट्टी के मार्ग में विचित्र घटना

लौटते समय वर्षा अधिक हो जाने के कारण मार्ग और भी जटिल एवं दुर्गम हो गया था। पाताल गंगा पर आकर यात्री घूम के मार्ग से ही जा रहे थे पर मैं तो पहिले आते समय फुटपाथ से आ ही गया था अतः इस बार भी अकेले उधर से ही जाने का सोचा। यद्यपि यात्रियों ने बहुत रोका भी पर मैं न माना, कुछ अभिमान भी हो गया था। भगवान् भक्त के अन्दर उगे हुये अभिमान के अंकुर को बिना हटाये कैसे रह सकते थे? थोड़ी दूर फुटपाथ पार करने पर देखता हूँ कि एक बहुत बड़े गड्ढ़े ने फुटपाथ काट दिया है। बड़ी सावधानी से काँपते-काँपते पैर रख रहा था पर पीठ पर पड़े हुये झोले की तनी कच्चे पहाड़ के एक नुकीले पत्थर के भाग से अटक गई। इधर-उधर मुड़ने की तो गुंजाइश थी ही नहीं। अब तो लोगों की बात न मानने पर मैं पछताने लगा। पर अब क्या हो सकता था? मृत्यु सामने दिखने लगी कि अब तो पाताल गंगा में लुढ़क कर ही पहुँचूँगा। आँखों के सामने अंधेरा हो गया। शरीर की सब सुध-बुध जाती रही। एक-मात्र प्रभु का नाम ही शेष था। थोड़ी देर बाद होश् हुआ तो अपने को गड्ढ़े के पार साफ मार्ग पर खड़ा देखा। न जाने कैसे झोले की तनी पर्वत शिला की नौक से छूटी, कैसे गड्ढ़ा पार किया और न किसी का सहारा दिखा। यह सब लीला देखकर प्रभु के चरणों में मन ही मन बैठकर रोना आ गया। विलख-विलख कर रोया। प्रभु मुर्दे में कैसे जीवन संचार करते हैं यह स्पष्ट भान होने लगा। सब अभिमान उतर गया और हृदय से आवाज निकलने लगी "जगत-पिता परमात्मा ही समस्त संसार का रक्षक है। उसी की लीला सर्वत्र है। सचमुच, उसकी सत्ता बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता। जीव मूर्खता से अहंकार करता है। दयालु भगवान् उस पर तनिक भी ध्यान न देकर उसकी सदैव रक्षा करते

रहते हैं।

इस प्रकार प्रभु के अवलम्बन से बदरीनाथ की यात्रा कर मैं वापिस लौटकर दिनांक ०६ सितम्बर १६४३ को ऋषिकेश पुनः वापिस आ गया। इस समस्त यात्रा में प्रभु भक्त जिन-जिन भाई, बहिनों ने तथा विभिन्न परोपकारी संस्थाओं के संयोजकों ने भोजनादि का प्रबन्ध कर यात्रा को सफल बनाया उनके प्रति कृतज्ञता के भाव कभी भी भुलाये नहीं जा सकते। ऐसे ही महानुभावों में प्रभु बैठकर जगत का संचालन विशेष रूप से करते हैं। वैसे तो वे सर्वत्र ही विद्यमान है।

ऋषिकेश से शिवपुरी आना

मुनि की रेती पर स्वामी शिवानन्दजी महाराज के आश्रम, आनन्द कुटीर पर आकर मैंने लगभग एक सप्ताह पुनः विश्राम किया। स्वामीजी का सत्संग मानव की संकीर्णता को दूर कर 'सर्व वसुधैव कुटम्बकम्' की ओर ले जाने में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ। स्वामीजी की नम्रता वर्णनातीत थी। अपने भक्तों से प्रभुचर्चा करते-करते वे विह्वल हो जाते थे और प्रायः उनके चरण तक स्पर्श कर लेते थे। मेरा भविष्य का कार्यक्रम विद्यालय चलाने का ही था अतः उनसे विदा लेते समय वे मुझ से कहने लगे- "भैया, गंगा का किनारा मिलना कठिन नहीं, विद्यालय चलाना कठिन नहीं। अनेक विद्यालय चल रहे हैं। गंगा किनारे अनेक आश्रम हैं। पर जो नम्रता आज व्यक्त हो रही है वही नम्रता क्या विद्यालय के उन्नति के शिखर पर पहुँचने पर भी रह सकेगी? मानव कार्य के आरम्भ में बहुत नम्र होता है पर जब ऋद्धि आती है तो गर्व करने लगता है इस कथन को कभी न भुलाया जावे और सदैव नम्र बने रहना उत्तरोत्तर विकास का मार्ग है। यह कहते-कहते मुझे पता भी न लगा और स्वामीजी ने झट मेरे चरण भी स्पर्श कर लिये।" मैं लज्जा से गढ़ गया। उनकी नम्रता के प्रत्यक्ष उदाहरण ने उनकी बात की पुष्टि कर दी जिसे मैं कभी नहीं भूला और प्रभु से सदैव यही प्रार्थना करता रहा हूँ कि "हे

प्रभु, सदा मुझे नम्र बनाए रखना।" मुनि की रेती से ऋषिकेश, हरिद्वार होते हुए मैं ग्वालियर आया और कुछ दिवस ग्वालियर में विश्राम कर दिनांक २१ सितम्बर १६४३ को ३ माह २१ दिन की यात्रा के बाद प्रभु निष्ठा के अंकुर उत्पन्न कर वापिस आगया।

भारतीय विद्यालय का जन्म

इस यात्रा के बाद शिवपुरी आकर जिस शिक्षण के उद्देश्य को लेकर मैंने यात्रा की थी उस अपने अनुभव को साकार देखने की दृष्टि से एक अत्यन्त रमणीक आरोग्यवर्द्धक एकान्त स्थान देख, वहीं एक वृक्ष के नीचे मैं बैठ गया। यहीं तीन बालक शिक्षा प्राप्त करने के हेतु मेरे पास आ गये। इन्हीं तीन बालकों से भारतीय-विद्यालय का श्रीगणेश हुआ। वैसे मेरे लघुभ्राता श्री देवीलालजी ने २२ जुलाई १६४३ को भारतीय- विद्यालय नाम से शहर में पाठशाला खोल दी थी। मेरे आने पर वे भी साथ आ गये। मैंने संरक्षक बने रहना ठीक समझा और संस्था की सम्पूर्ण व्यवस्था देखने का भार श्री देवीलालजी को दे दिया। वे मेरे सहयोग से तथा अपने शैक्षणिक अनुभव एवं सूझबूझ से संचालक पद को भली प्रकार सम्हाले रहे। शनैः शनैः प्रभु कृपा से तीन बालकों की संस्था बढ़कर अब मध्यप्रदेश की गण्यमान्य संस्थाओं में से एक अपनी अनूठी आश्रम पद्धति की संस्था हो गई। विद्यालय के विशुद्ध वातावरण में मेरे सत्संग के विचार भी उभरने लगे। संध्या, भजन-पूजन, उपासना के अतिरिक्त मैं नित्य ही प्रातःकाल गीता प्रवचन भी करता था। शनैः शनैः उपासना में वृद्धि होने लगी और मैं शक्ति की अनुभूति करने की दिशा की ओर चल पड़ा।

महात्मा श्री नारायणदास जी प्रणीत ग्रन्थ

1. गीतामृत (जीवन यापन की कला) (प्रथम भाग अध्याय 1 से 6)
2. गीतामृत (जीवन यापन की कला) (द्वितीय भाग अध्याय 7 से 12)
3. गीतामृत (जीवन यापन की कला) (तीसरा भाग अध्याय 13 से 18)
4. रामचरित मानस के 10 प्रसंग
5. रामचरित मानस के 10 रहस्य
6. साधक शंका समाधान
7. साधक प्रश्नोत्तर शतक (प्रथम)
8. साधक प्रश्नोत्तर शतक (द्वितीय)
9. साधक विचार प्रगति
10. साधक साधना (भजन)
11. जैसे मैंने सीखा (अनुभूति से पूर्व की मेरी जीवन घटनायें)
12. कुण्डलिनी (व्यक्तिगत अनुभव)
13. आत्मबोध
14. Realisation of the Self (English)
15. साधना
16. स्वशक्ति साधना का संक्षिप्त परिचय
17. दिव्यशक्ति बोध (भजन)
18. वचनामृत
19. बुद्धि विकास
20. बापू के एकादश वृत
21. ईशावास्योपनिषद् (व्यक्तिगत दृष्टिकोण)
22. मानव विकास की पूर्णता
23. कुण्डलिनी का जीवन में उपयोग (सजिल्द)
24. रामचरित मानस में कुण्डलिनी (व्यक्तिगत अनुभव)
25. मैंपन का विवेचन (व्यक्तिगत अनुभव)

प्रकाशक- नारायण आध्यात्मिक ट्रस्ट शिवपुरी

मुद्रक- मुकेश प्रेस, शिवपुरी (म.प्र.) फोन -(07492) 232104